अध्याय–1

13वीं शताब्दी में भारतीय संगीत एंव इतिहास

सभ्यता तथा संस्कृति की चर्चा सदैव एक साथ ही होती है, जिस कारण इन्हें आम भाषा में साम्य समझा जाता है, परन्तु इसमें काफी अंतर पाया जाता है। सभ्यता का अर्थ है ''समाज का एक विकसित स्वरूप''(1)। प्रो० हुमायूं कबीर के अनुसार ''सभ्यता जीवन की वह संगठित अर्थात एकत्र किए गए संसाधनों की संस्था है, जो समाज के रहन–सहन के ढंग को संभव बनाती है''। इसी प्रकार संस्कृति को सरल रूप से समझने के लिए कहा जा सकता है, कि सुधरी हुई व उत्तम स्थिति अर्थात जो जीवनयापन करने का सलीका या जीवन जीने की शैली है। संस्कृति के अंतर्गत मानव की रचनात्मक व कलात्मक कार्यों का अध्ययन किया जाता है। डॉ० व्हाइट हेड के द्वारा इस विषय में कहा गया है कि "Culture is activity thought & receptiveness to beauty & human feelings." इस प्रकार कहा जा सकता है, कि मानव के भावों की अनुभूतियों का सौंदर्य के साथ सम्मिश्रण होने पर संस्कृति का निर्माण होता है। ''सत्यम् शिवम् सुंदरम्'' को संस्कृति के महान मंत्र के रूप में वर्णित किया जा सकता है। सभ्यता यदि शरीर है, तो संस्कृति उसकी आत्मा के रूप में व्यक्त करना गलत नहीं होगा(2)। भारतीय सभ्यता की गणना संपूर्ण जगत में प्राचीनतम तथा श्रेष्ठतम सभ्यताओं के रूप में की जाती है। सम्पूर्ण जगत में अजर–अमर संस्कृति के रूप में भारतीय संस्कृति को स्वीकारा गया है। भारत विभिन्न भाषाओं, जातियों, रीति–रिवाजों के पश्चात् भी एक अखंड राष्ट्र के रूप में पृथक पहचान रखता है। इस कारण ही सभ्यता की प्रौढ़ स्थिति को ही संस्कृति कहा गया है, व भारतीय संस्कृति अपनी समृद्धता के कारण ही सम्पूर्ण विश्व के पटल पर अपनी अनूठी छाप प्रस्तुत करती रही है।

भारतीय संस्कृति को इस समृद्धता तक पहुँचानें में सबसे महत्वपूर्ण योगदान भारत के गौरवपूर्ण इतिहास का है। किसी राष्ट्र को जानने के लिए उसके इतिहास का अध्ययन करना अत्यन्त अवश्यक हो जाता है, ताकि इस बात का ज्ञान हो सके, कि उस समय या काल में क्या

(1) भारतीय सभ्यता एवम् संस्कृति/चन्द एस.एम/पृ0–1
(2) भारतीय सभ्यता एवम् संस्कृति/चन्द एस.एम/पृ0–1

परिस्थिति थी? उसकी सामाजिक, आर्थिक तथा संस्कृतिक स्थिति क्या थी? आदि इस प्रकार के विभिन्न प्रश्नों का उत्तर इतिहास के गर्भ में ही छिपा है, जो अध्ययन के पश्चात् ही प्राप्त होता है। इतिहास का अर्थ है ''ऐसा ही निश्चित तौर पर घटा था''। विद्वानों द्वारा कुछ परिभाषा इस प्रकार दी गयी है– **प्रो. घाटे** द्वारा कहा गया है कि ''इतिहास एक ऐसा विषय है, जो मानव जाति के भूत अर्थात् अतीत की घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन व लेखा–जोखा है।'' इसी प्रकार **जी. आर. एल्टन** का मत है कि ''इतिहास की व्याख्या भूत और वर्तमान के मध्य सेतु अवस्थित है।'' इतिहास के विषय में इस प्रकार भी समझा जा सकता है, कि इतिहास अतीत से वर्तमान के मध्य हुए काल के परिवर्तन का संवाद है। इतिहास को जानने का मुख्य उद्देश्य भी यही है, कि जो घटनाएं अतीत में घटित हुयी है, उनकी विवेचना कर उनसे सीखा जा सके। इसी क्रम में भारत वर्ष के वृहद इतिहास को जान मध्यकालीन भारत के संगीत तथा उसकी सामाजिक परिस्थितियों तथा संस्कृति को समझनें का प्रयास किया जा रहा है। संस्कृति का वैभवशाली होना राज्य की स्थिति का द्योतक माना जाता है।

प्रस्तुत शोधकार्य का मुख्य विषय व केन्द्र बिन्दु संगीत रत्नाकर व पं0 शारंगदेव जी है। जिसका रचनाकाल 1210 ई० से 1247 ई० के मध्य माना जाता है तथा इसी को आधार मानते हुए, 1210 ई० से 1247 ई० के मध्य घटित हुयी घटनाओं को शोधकार्य की अवश्यकतानुसार व इसकी वस्तुनिष्ठता को प्रमाणित करने के उद्देश्य से शोधार्थी द्वारा बताने का प्रयास किया जा रहा है। मध्यकाल में भारत पर अनेकोंनेक मुस्लिम अक्रान्ताओं द्वारा निरन्तर अक्रामण हो रहे थे, जिससे भारत आपनी रक्षा व सूरक्षा करने में पूर्णतः असमर्थ सिद्ध हुआ। इस काल में अत्यन्त दुःखद यह भी था, कि भारत के समस्त राज्य एक राष्ट्र के स्थानों पर अलग–अलग कई राज्यों में विभक्त थे तथा आपसी द्वेष भाव व वैमनस्य के भावों से घिरे रहे और होने वाले विदेशी आक्रमणों का सामना एकजुटता से नहीं कर सके, जिसका पूर्ण लाभ इन मुस्लिम शासकों द्वारा उठाया गया।

मुसलमानों के प्रवेश के कारण भारत में एक भिन्न संस्कृति का प्रवेश होता गया, जिससे भारतीय सस्कृति भी अछूती नहीं रही। भारतीय संस्कृति में अस्थिरता उत्पन्न होने लगी। संगीत के आध्यात्मिक पक्ष का ह्यस होने लगा।[(3)] सभी के जीवन में मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव पड़नें लगा, क्योंकि अब दो सस्कृतियाँ एक ही राष्ट्र में अपने–अपने अस्तित्व के लिए

(3) भारतीय संगीत का इतिहास/जोशी उमेश/पृ0–175

संघर्ष कर रही थी। एक ओर जहां भारतीय संस्कृति अपने मूल रूप की रक्षा की आस में थी और वहीं मुस्लिम संस्कृति अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए प्रयास कर रही थी। जिसके कारण भारत का जन–जीवन पूर्ण रूप से प्रभावित हो रहा था। जन–समाज में सभी एक प्रकार से अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे थे अर्थात सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थित पूर्णतः अस्त–व्यस्त थी। कुछ इस प्रयास में थे, कि इस सस्कृति को न ही अपनाना है और न ही स्वीकार करना है, इस प्रकार के होने वाले विरोध को इन शासकों द्वारा दबाएं जाने का प्रयास भी साथ ही आरम्भ होने लगा, जिसके फलस्वरूप कुछ ने डर व भय के कारण अपनया तो कुछ के द्वारा प्रलोभन व लालच में स्वीकार किया गया। जिससे भारतीय संस्कृति संघर्ष के एक अत्यन्त कठिन दौर से गुजरने लगी।

इसी क्रम में संगीत भी इस बदलाव से अछूता नहीं रह सका और संगीत का आध्यात्मिक, सौन्दर्यपूर्ण, भक्तिपूर्ण, व श्रृंगारिक गुण भोग–विलास में लिप्त होकर अपनी शुद्धता से दूर होने लगा तथा भारत आज्ञानता के घनें कोहरे से अच्छादित होने लगा।[(4)]

1.1 दिल्ली सल्तनत

दिल्ली सल्तनत के पूर्व का काल राजपूतों के काल के रूप में जाना जाता है तथा वह सभी समृद्ध व शक्तिशाली राज्य थे, परन्तु उस समय भारत एक केन्द्रीय सत्ता के स्थान पर कई राज्यों में विभक्त था और आपस में एक दूसरे से मतभेद रखते थे, जिस कारण आपसी युद्ध की स्थिति बनी रहती थी। इसी का लाभ उठाकर सर्वप्रथम मोहम्मद गजनवी ने भारत पर आक्रमण किया और इन छोटे–छोटे राज्यों का आपस में युद्ध कराया तथा स्थिति का लाभ उठाते हुए अपना आधिपत्य स्थापित करते गए तथा भारत की अनमोल धरोहर को नष्ट करते गए। इस काल में ही विक्रमशीला, नालंदा, तक्षशिला जैसे आदि विश्वविद्यालयों को व उनके पुस्तकालयों को नष्ट किया गया, जो महिनों तक जलते रहें, इतना ही नहीं मोहम्मद गजनवीं व मोहम्मद गोरी जैसे आक्रान्ताओं द्वारा भारतीय संस्कृति, सभ्यता, स्थापत्य, संगीत आदि पर भी आक्रमण व अतिक्रमण किया गया व मन्दिरों आदि को धवस्त करने के अथक प्रयास किए गए। इस अतिक्रमण का कार्य दिल्ली सल्तनत तक ही सीमित नहीं रहा, यह कार्य निरन्तर मुगलों तक स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। 12वीं शताब्दीं के अन्त से ही भारत पर

(4) भारतीय संगीत का इतिहास/जोशी उमेश/पृ0–176

अफ़गानों, तुर्कों तथा फारस के आक्रन्ताओं द्वारा आक्रमण का दौर आरम्भ हो चुका था। मोहम्मद गोरी द्वारा किए जा रहे, निरन्तर आक्रमणों से दिल्ली की सत्ता को समाप्त कर दिया गया व 1192 ई० में हुए तराईन के निर्णायक युद्ध से दिल्ली की सत्ता पर इन आक्रान्ताओं का आधिपत्य स्थापित हो गया और मोहम्मद गोरी द्वारा जाते–जाते अपनें दासों को भारत का शासन सौंप दिया गया, जिससे गुलाम वंश की नींव स्थापित हुयी।

इसे दिल्ली सल्तनत की नींव भी कहा जा सकता है। मोहम्मद गोरी के द्वारा भारत विजय के पश्चात् वह गजनी लौट गया, और जहाँ लौटते समय 1206 ई० में खोक्खर में विद्रोहियों द्वारा दमयक स्थान पर उसका वध कर दिया गया[(5)]। मोहम्मद गोरी की कोई पुत्र संतान नहीं थी, जिस कारण अलाउद्दीन को गजनी का उत्तराधिकारी घोषित किया गया, जिसे ग्यासुद्दीन द्वारा हटाकर आधिपत्य स्थापित किया गया व मोहम्मद गोरी द्वारा भारत से जाते समय भारत का सारा कार्यभार अपने सेनापति कुतुबुद्दीन ऐंबक को सौंप दिया गया था[(6)] और इस प्रकार भारत में गोरी के उत्तराधिकारी के तौर पर कुतुबुद्दीन ऐंबक गद्दी पर बैठा[(7)] व एक नवीन काल का आरम्भ हुआ, जिसे दिल्ली सल्तनत के नाम से जाना गया, जिसका काल 1206 ई० से 1526 ई० के मध्य माना जाता है तथा इस काल में प्रथम राजवंश के रूप में जिस राजवंश ने शासन किया गया, वह गुलाम वंश के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार दिल्ली सल्तनत में सर्वप्रथम गुलाम वंश व इसके बाद खिलजी, तुगलक, सैय्यद व लोदी वंश की नींव अपनी–अपनी महत्वकांक्षाओं के आधार पर स्थापित होती गयी।

1206 ई० से 1526 ई० तक के काल को भारत के उत्तर मध्यकालीन इतिहास के दिल्ली सल्तनत का काल के रूप में जाना गया। जिसमें से 1206 ई० से 1290 ई० का समय गुलाम वंश का काल था। 13वीं शताब्दी का भारत इस काल को उत्तर मध्यकाल के आरम्भिक काल के रूप में भी जाना जाता है। साथ ही यह काल परिवर्तन के दौर का भी साक्षी रहा है। इस काल से भारत में नवीन परम्परा को देखा जा सकता है, जिसमें भारत की केन्द्रीय सत्ता मुस्लिम शासकों के हाथ में हस्तान्तिरित हुयी और जिसके द्वारा भारत के केन्द्र में गुलाम वंश की स्थापना हुयी।

---

(5) दिल्ली सल्तनत/श्रीवास्तव (डॉ०) आर्शीवादी लाल/पृ०–83
(6) दिल्ली सल्तनत/श्रीवास्तव (डॉ०) आर्शीवादी लाल/पृ०–93
(7) मध्यकालीन भारत/थापर रोमिला/पृ०–38

1.1.2 गुलाम वंश 1206 ई०–1290 ई०

गुलाम वंश को कई नामों से इतिहासकारों ने सम्बोधित किया है। इसको गुलाम वंश इस कारण कहा जाता था, क्योंकि मोहम्मद गोरी द्वारा अपने दास (गुलाम) को इस राजवंश का सर्वप्रथम शासक घोषित किया।[8] कुछ इतिहासकारों द्वारा मामलुक कहा गया, क्योकिं मामलुक का अर्थ भी गुलाम या दास ही है तथा इसे इल्बरी भी कहा गया है, क्योंकि इस राजवंश में जितने भी शासक हुए, वह सभी इल्बरी जाति के तुर्क कहे जाते है, किन्तु कुतुबुद्दीन ऐबक एकमात्र इल्बरी तुर्क नहीं था। यह मध्यकालीन भारत में सर्वप्रथम मुस्लिम राजवंश रूप में स्थापित होने वाला राजवंश था। जिसकी स्थापना मोहम्मद गोरी द्वारा पृथ्वीराज चौहान को हराकर की गयी।[9]

1.1.2 कुतुबुद्दीन ऐबक 1206 ई०–1210 ई०

कुतुबुद्दीन ऐबक को प्रथम गुलाम शासक था जो 1206 ई० में गद्दी पर बैठा। ऐबक को उसके बाल्यकाल में ही बेच दिया गया था, जिससे उसका दास के रूप में जीवन आरम्भ हुआ था। ऐबक के माता–पिता तुर्की थे।[10] 1206 ई० में गोरी द्वारा मलिक की उपाधी दे, भारत की गद्दी पर बैठाया गया और मलिक तथा सिपहसालार की उपाधी के अतिरिक्त स्वंय को सुल्तान कभी घोषित नहीं किया। ऐबक द्वारा अपनी पुत्री का विवाह इल्तुतमिश के साथ कराया गया। ऐबक का कुल शासनकाल मात्र चार वर्ष का था, 1210 ई० में चौगान (पालो) खेलते हुए घोड़े से गिरकर मारा गया।[11] इसके पश्चात् इसका पुत्र आरामशाह गद्दी पर बैठा, परन्तु अयोग्य होने के कारण अधिक समय तक गद्दी पर न बैठ सका।

1.1.3 शम्सुद्दीन इल्तुतमिश 1210 ई०–1236 ई०

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश इल्बरी तुर्क जाति के माता पिता की सन्तान था,[12] जिसे उसके भाइयों ने बेच दिया था और वह अन्त में कुतुबुद्दीन ऐबक का दास बना।[13] कुछ इतिहासविदों ने

---

(8) दिल्ली सल्तनत/श्रीवास्तव (डॉ०) आर्शीवादी लाल/पृ०–99
(9) दिल्ली सल्तनत/श्रीवास्तव (डॉ०) आर्शीवादी लाल/पृ०–79
(10) दिल्ली सल्तनत/श्रीवास्तव (डॉ०) आर्शीवादी लाल/पृ०–99
(11) मध्यकालीन भारत/चन्द्रा सतीश/पृ०–68
(12) दिल्ली सल्तनत/श्रीवास्तव (डॉ०) आर्शीवादी लाल/पृ०–105
(13) दिल्ली सल्तनत/श्रीवास्तव (डॉ०) आर्शीवादी लाल/पृ०–105

इसे गुलाम वंश का वास्तविक सस्थांपक स्वीकारा है[14] व इसने कुतुबुद्दीन ऐबक के अधूरे निमार्णों को पूरा कराने का कार्य किया और अपनी राजधानी दिल्ली को बनाया। इल्तुतमिश को गुलामों के गुलाम की भी संज्ञा भी दी गयी है, क्योंकि यह गुलाम का गुलाम था तथा साथ ही यह कुतुबुद्दीन ऐबक का दामाद बना[15]। इल्तुतमिश द्वारा गुलाम वंश के शासन को दृढ़ बनाने के लिए प्रयास किए व शासन क्षेत्र को बढाने का कार्य किया, जिस कारण भारत मूल सस्कृति को सर्वाधिक हानी पहुँची। रूकनुद्दीन फिरोज़ 1236 ई० में गद्दी पर बैठा, परन्तु अधिक समय तक नहीं बैठ सका। जिसके पश्चात् रज़िया गद्दी पर बैठी।

1.1.4 रजिया सुल्तान 1236 ई०–40 ई०

रज़िया का गद्दी पर बैठना इतिहास की महान घटनाओं में से एक है। इसने अपने भाई रूकनुद्दीन को गद्दी से हटाकर सत्ता को प्राप्त किया।[16] इसे जनता का पूरा सर्मथन भी प्राप्त था और रज़िया के द्वारा पर्दा की प्रथा को छोड़ पुरूषों के समान पोषाक(कपड़े) पहन दरबार का कार्य किया। यह दरबार की ही षड़यंत्र व राजनीती मे ही उलझी रही और इन्हीं षड़यंत्रों के चलते 1240 ई० में रजिया की हत्या कर दी गयी। 1240 ई० से 1242 ई० के मध्य मुईजुद्दीन बहरामशाह शासक बना, यह इल्तुतमिश का तीसरा पुत्र था। इसे गद्दी पर अमीरों के एक संगठन द्वारा बैठाया गया परन्तु शासन की शक्तियाँ व अधिकार इसके हाथ में नहीं थे।

इसके पश्चात् अल्लाउद्दीन मसूदशाह गद्दी पर बैठा यह भी अमीरों की कठपुतली था और उसी में हुए युद्ध मे पराजित हुआ। इसके बाद नासिरूद्दीन महमूद शर्तों के साथ गद्दी पर बैठा और अपने सार अधिकार बलबन के हाथों में सौंप दिए। 1210 ई० से 1247 ई० के मध्य गुलाम वंश का राज्य रहा। इस प्रकार गुलाम वंश का शासन भारत के केन्द्र में चलता रहा इसके अतिरिक्त भारत में कई और राज्य अपने–अपने असितत्व के लिए संघर्ष कर रहे थे। इन संघर्षों में दक्षिण भारत के कई राज्यों जिसमें मुख्य रूप से पाण्ड्य, चेर, चोल, काकतीय, होयसल, देवगिरि के यादव आदि तथा पश्चिम में चालुक्य, पूर्व में सेन तथा आसात के शुतिया के अतिरिक्त मेवाड़ तथा चन्द राजवंश शामिल थे।

---

(14) मध्यकालीन भारत/चन्द्रा सतीश/पृ०–65
(15) दिल्ली सल्तनत/श्रीवास्तव (डॉ०) आर्शीवादी लाल/पृ०–105
(16) दिल्ली सल्तनत/श्रीवास्तव (डॉ०) आर्शीवादी लाल/पृ०–105

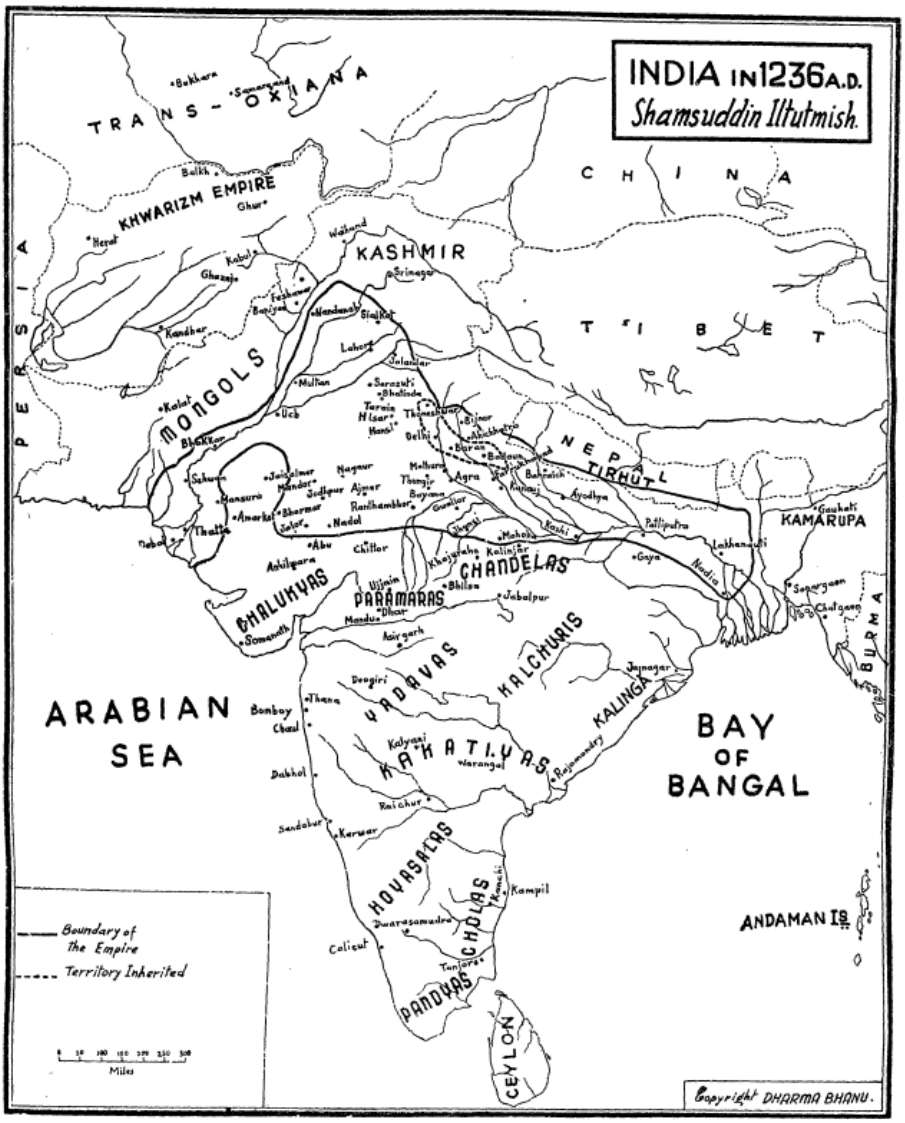

(17)

1.2 13वीं शताब्दी में भारत के अन्य राज्य

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत्।
वर्ष यद् भारतं नाम यत्र यं भारती प्रजा।।

(वायु पुराण–45,75)

अर्थात्– समुद्र के उत्तर व हिमालय के दक्षिण में स्थित विशाल भूभाग है, उसे ही भारत नाम से जानना चाहिए व उसके निवासी भारतीय प्रजा के रूप में जानी जाती है।**(18)** इस प्रकार भारत दो दिशाओं के मध्य के भाग के रूप में वर्णित किया गया है। उत्तर भारत

(17) दिल्ली सल्तनत/श्रीवास्तव (डॉ०) आर्शीवादी लाल/पृ०–113
(18) दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास/दुबे (डॉ) हरिनारायण/आमुख

की अपेक्षा दक्षिण भारत में आक्रान्ताओं द्वारा होने वाले आक्रमणों की संख्या अत्यन्त कम थी, परन्तु दक्षिण भारत में भी उत्तर भारत की भाँति राज्यों में संर्घष जारी था। 13वीं शताब्दी में भारत के विभिन्न राज्यों की राजनीतिक स्थिति को जानने के उद्योग से राजवंशों के नाम व तत्कालीन शासकों का वर्णन करने का विन्रम प्रयास किया जा रहा है, जो इस प्रकार है–

1.2.1 पाण्ड्य राजवंश (580 ई०–1500 ई०)

इस राजवंश का आरम्भिक इतिहास साक्ष्यों के आभाव में अज्ञात है। पाण्ड्यों के साक्ष्य के विषय में आशोक के अभिलेखों में वर्णन प्राप्त होता है, जिसके माध्यम से पाण्ड्यों की प्राचीनता का पता चलता है। आरम्भ में शासकों के मात्र नाम ही प्राप्त होते है। इसके अतिरिक्त साक्ष्यों का आभाव रहा है। इस राजवंश का सस्थापक 580 ई० से 620 ई० के मध्य कुडुंगोन द्वारा माना जाता है।[19] जिन्हें प्रथम पाण्ड्य स्वीकारा गया है। जिसकी राजधानी मदुरा थी।[20] इसके पश्चात् शोधार्थी द्वारा अपने शोधकार्य के समय अर्थात् काल को ध्यान में रखते हुए इस वंश के राज्यकाल का वर्णन किया गया है। 13वीं शताब्दी में चोलो की शक्ति के क्षीण होने के साथ पाण्ड्य राजवंश का पुनरूत्थान हुआ[21] और 1110 ई० से 1213 ई० के मध्य इस राज्य के जटावर्मन कुलशेखर ने दक्षिण के तमिल भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित किया[22] तथा इसके बाद 1216 ई० से 1238 ई० के मध्य जटावर्मन के भाई मारवर्धन सुंदर पाण्ड्य द्वारा वास्तविक रूप से राज्य का कार्य व साम्रज्य का आरंभ हुआ और साथ ही यह समय चोल तथा होलसयों के साथ होने वाले संघर्षों का काल रहा, जिसमें होलसय द्वारा पाण्ड्यों का साथ दिया गया, इसके पश्चात मारवर्मन सुंदर पाण्ड्य द्वितीय गद्दी पर बैठा[23] और स्वंय को चोलों के विरूद्ध स्वतन्त्र घोषित कर दिया।

1.2.2 चोल राजवंश (871 ई०–1279 ई०)

दसवीं शताब्दी में कुछ राजवंशीय शक्तियों का प्रर्दुभाव दक्षिणी प्रायाद्वीप भारत में हुआ, जिनमें प्रमुख्य रूप से पाण्ड्य तथा चोल राजवंश का वर्णन प्राप्त होता है। यह राजवंश सांस्कृतिक

---

(19) दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास / दुबे (डॉ) हरिनारायण / 187
(20) Prehistoric Ancient and Hindu India/Banerji R.D/p.283
(21) दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास / दुबे (डॉ) हरिनारायण / 197
(22) दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास / दुबे (डॉ) हरिनारायण / 197
(23) दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास / दुबे (डॉ) हरिनारायण / 197

तथा प्रशासनिक आधार पर समृद्ध व सुसज्जित होने के साक्ष्य प्राप्त होते है। चोल राजवंश पेन्नार तथा वेल्लारू नामक नदियों के मध्य क्षेत्र में अवस्थित था, साथ ही यह पूर्वी तट से भी सम्बद्ध था। इस राज्य का केन्द्र कावेरीपट्नम्, त्रिचनापल्ली, तंजोर, कोच्ची थे। आरम्भ में यह राज्य एक कबिलायी समुदाय के रूप में विकसित हुआ। संगम साहित्य के अर्न्तगत चेर वंश जो केरल के क्षेत्र में, पाण्ड्य राज्य का क्षेत्र दक्षिणी तमिलनाडू के साथ चोल वंश का वर्णन प्राप्त होता है।[24] चोल साम्राज्य दक्षिण भारत में 871 ई० से 1279 ई० तक रहा। जिसे संगम चोल भी कहा जाता है तथा ईसा के बाद के चोलों को शाही चोल कहा गया, जिनका शासन काल 848 ई० से 1279 ई० के मध्य का रहा है तथा संगीत रत्नाकर के समय के अनुसार देखे तो उस समय कुलोत्तुंग तृतीय (1178 ई० –1218 ई०) राजराज तृतीय (1216 ई०–1246 ई०) के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। प्रस्तुत शोध की आवश्यकता के अनुसार 13वीं शताब्दी का वर्णन प्राप्त होता है, जो इस राजवंश का पतन काल था।

1.2.3 चेर राजवंश (1700ई०पू0–1314ई०)

इस काल में तीन महाशक्तियों का वर्णन प्राप्त होता है। चेर राजवंश दक्षिण भारत का राज्य था, जो वर्तमान के तमिलनाडु तथा केरल के कुछ भाग में स्थित था।[25] इस राजवंश की भाषा के रूप में तमिल ब्राह्मी भाषा का प्रयोग होता था। संगीत रत्नाकर का काल को ध्यान में रखते हुए, जब इस राज्य के विषय में दत्त सामग्री को एकत्र करते है तो उस समय चेर के अंतिम राजाओं का वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें रामवर्मन कुलशेखर व रविवर्मन कुलशेखर का वर्णन ही प्राप्त होता है। इस काल में साहित्य का सर्वाधिक उठान हुआ, जिसे तमिल साहित्य के नाम से जाना जाता है।

1.2.4 पूर्वी गंग राजवंश (496ई०–1434ई०)

पूर्वी गंग राजवंश एक हिंदू राज्य वंश था, जिसका समय 11वीं शताब्दी से 15वीं शताब्दी तक रहा। 11वीं श्ताब्दी के मध्य गोदावरी के निकट कलिंग पर पूर्वी गंगवंश का शासन था। राजाराज प्रथम का विवाह राजेन्द्र चोल द्वितीय की पुत्री के साथ हुआ।[26] इसकी राजधानी

---

(24) दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास/दुबे (डॉ) हरिनारायण/पृ०–198
(25) Early India&From The Origin To AD 1300/Thapar Romila/p.233
(26) Prehistoric Ancient and Hindu India/Banerji R.D/p.270

कलिंग थी,[27] जिसका वर्तमान क्षेत्र उड़ीसा है व पश्चिम बंगाल आंध्र, छत्तीसगढ़ के भी कुछ सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त वर्तमान आंध्रा के जिले भी शामिल थे तथा इस पूर्वी गंग राजवंश द्वारा कोणार्क सूर्य मंदिर का भी निर्माण कराया गया। राजराजा तृतीय (1198ई०–1211ई०), अनंग भीम देव तृतीय (1211ई०–1238ई०), नरसिम्हा देव प्रथम (1238ई०–1264ई०) का काल 13वीं शताब्दी के अर्न्तगत प्राप्त होता है।

1.2.5 मेवाड़ के गुहिल राजवंश(728ई०–1947ई०)

संसार के प्राचीन राजवंशों में शामिल है, मेवाड़ के अर्न्तगत तीन राज घरानों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। जिसमें मौर्यों का वर्णन प्राप्त होता है, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के वंशज राजपूत माने गए है, इनका चित्तौड पर आधिपत्य था और परमार राजपूत भी कहा है।[28] इसके पश्चात् गोहिलों वर्णन प्राप्त होता है, जिनका समय 734 ई० से 1303 ई० के मध्य का माना जाता है। गुहिल वंश का शासन प्रतिहार व गुर्जर जागिरदारों के रूप में आरम्भ 8वीं से 10वीं शताब्दी के मध्य की व इनका क्षेत्र व राजधानी राजस्थान के नागदा व अहार थे। 12वीं शताब्दी के मध्य में यह दो शाखाओं में विभक्त हुए, एक शाखा रावल व दूसरी सिसोदिया। सिसोदिया राजवंश का काल 1326 ई० से आरम्भ माना जाता है तथा यह गुहिल ही गहलोत कहलाए व यही इनका गोत्र कहलाया। यदि 13वीं शताब्दी के संदर्भ में देखे तो 1213 ई० से 1250 ई० के मध्य जैत्र सिंह के शासन के रूप में मिलता है। 1222 ई० से 1229 ई० के मध्य गुलाम वंश के शासक इल्तुतमिश से जैत्र सिंह का भीषण संघर्ष हुआ, जिसमें नागदा जो जैत्र सिंह की राजधानी थी, उसको नष्ट कर दिया गया और मेवाड़ की नई राजधानी चित्तौड़ बनी बाद में इल्तुतमिश को जैत्र सिंह के हाथों परास्त होना पड़ा। इस प्रकार मेवाड़ के जैत्र सिंह के पराक्रमी शासक होने व मेवाड़ की वीरता की जानकारी प्राप्त होती है। जैत्रसिंह द्वारा स्वंय के शिलालेखों में महाराजाधिराज कहकर सम्बोधित किया है।[29]

1.2.6 सौराष्ट्र चालुक्य (940ई०–1244ई०)

सौराष्ट्र के चालुक्यों को अनाहिलपाजक के चालुक्य नाम से भी जाना जाता है तथा इनकी राजधानी अनाहिलवाड़ा थी, जिसे वर्तमान में पाटन कहा जाता है। इस राजवंश का संस्थापक

---

(27) दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास/दुबे (डॉ) हरिनारायण/पृ०–348
(28) The Journal-The Asiatic Society of Bengal Vol-III/James Prinsep/Calcutta/p.343
(29) The Struggle for Empire/Majumdar R.C/p.89

मूलराज था। इसके पूर्व के राजाओं के विषय में जानकारी प्राप्त नही होती है। चालुक्यों का काल 9वीं से 13वीं शताब्दी तक रहा।[30] इन्हें सोलंकी वंश भी कहा जाता था और यह वर्तमान गुजरात के काठियावाड़ व पाटन क्षेत्र के माने जाते हैं। सौराष्ट्र में मुख्य रूप से चालुक्यों का शासन था। इस वंश का राज्यकाल 940 ई० से 1244 ई० तक रहा। जिसमें 1178 ई० से 1240 ई० के मध्य भीम द्वितीय[31] तथा 1240 ई० से 1244 ई० तक त्रिभुवन पाल का शासनकाल था।[32]

1.2.7 सेन वंश (1070–1230ई०)

सेन वंश मूलतः दक्षिण के निवासी थे, जो बाम्बे प्रसिडेन्सी के अर्न्तगत आने वाले करनारी जिले से आए थे, तथा अभिलेखों में करनात क्षत्रिय स्वीकारा है। ग्याहरवीं शताब्दी में यह दो स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त हुए, जिसमें से एक विजयसेन द्वारा तथा दूसरा नान्यदेव के अधीन। सेन वंश आरम्भ में पश्चिम बंगाल की छोटी सी सियासत के रूप में स्थापित हुआ, परन्तु यादवों की कमजोर परिस्थिति का लाभ उठाकर पूर्वी बंगाल पर भी आधिपत्य स्थापित कर लिया और विक्रमपुर अपनी राजधानी बनाया[33]। मध्य बंगाल पर अधिपत्य स्थापित करने वाला एक राजवंश था, इस राजवंश के अंतर्गत जयदेव द्वारा गीतगोविंदम् जैसे महान ग्रन्थ की रचना हुई, जो एक अष्टपदी है व राधा–कृष्ण के वर्णन पर आधारित एक महान ग्रन्थ है। इस राजवंश का मूल स्थान कर्नाटक था। यह राजवंश सर्वाधिक मंदिरों का निर्माण कराने वाला राजवंश था। यह राजवंश स्वयं को ब्रह्मक्षत्रिय, क्षत्रिय स्वीकारता था। हेमंत सेन, विजयवल्लाल सेन, लक्ष्मण सेन, विश्वरूप सेन व केशव सेन नामक शासक हुए।

1.2.8 परमार (800–1327ई०)

भारत के मध्य भाग में धार, उज्जैन, मालवा, सिंधू, आबू क्षेत्र में परमारों का राजवंश था, जो अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे थे। परमार राजवंश दसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में राष्ट्रकूटों के अधीन था[34] परन्तु उत्तरार्द्ध आते–आते वाक्पतिराजा द्वितीय के नेत्रत्व में

---

(30) Prehistoric Ancient and Hindu India/Banerji R.D/p.247
(31) The Early History of The Deccan Part-VII-XI/p.483
(32) Prehistoric Ancient and Hindu India/Banerji R.D/p.251
(33) Prehistoric Ancient and Hindu India/Banerji R.D/p.266
(34) Prehistoric Ancient and Hindu India/Banerji R.D/p.245

स्वतंत्र राज्य के रूप में असितत्व में आया। 1210 ई० से 1247 ई० के मध्य अर्जुनवर्मन, देवपाल, जयतुगीदेव का क्रमशः राज्य था। परमारों का नाम उनके महान व चक्रवर्ती सम्राट विक्रमादित्य के पराक्रमों के कारण ही जाना जाता है, जिनका काल ईसवी पूर्व 700 से 800 पहले का माना जाता है। इस परमार वंश का कुल राज्य काल 800 ई०पू० से 1327 ई० के मध्य रहा।

1.2.9 चन्द वंश (700ई०–1790ई०)

चन्द वंश की स्थापना सोम चन्द द्वारा दसवीं शताब्दी में की गयी और कुरमान्चल कहा जाता था तथा कुमाऊ स्थित चम्पांवत इसकी राजधानी थी, जो काली नदी के तट पर स्थित है[(35)]। 11वीं से 12वीं शताब्दी के मध्य इस राजवंश द्वारा कई मन्दिरों का भी निमार्ण करवाया गया, जिनमें मुख्य रूप से बालेश्वर मन्दिर तथा नागनाथ का मन्दिर है, जो आज भी मौजूद है[(36)]। 700 ई० से 1790 ई० के मध्य उत्तराखंड के कुमाऊं क्षेत्र में राज्य करने वाला एक राजवंश था, जिसका शासन काल 18वीं शताब्दी में आने वाले अंग्रेजों के शासन काल तक ही रहा। 13वीं शताब्दी में भीष्मचन्द (1205 ई०–1226ई०) मेघचन्द (1226 ई०–1233 ई०) तथा ध्यानचन्द (1233 ई० से 1251ई०) का वर्णन प्राप्त होता है।

1.2.10 होयसल वंश (1000–1346ई०)

12वीं से 14वीं शताब्दी तक राज्य करने वाला दक्षिण भारत का राज्य था, जिसने बदलती परिस्थितियों का लाभ उठाकर वर्तमान कर्नाटक से लेकर तमिलनाडु स्थित कावेरी नदी तक के भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। इस राजवंश का उदय दसवीं शताब्दी में हुआ। इस राजवंश का प्रथम पुरूष के रूप में साल या शाल को माना जाता है व ध्वज पर व्याघ्र–वध का चित्र अंकित किया गया। होयसलों द्वारा स्वंय को यदु वंशीय तथा चन्द्र वंशीय क्षत्रिय घोषित किया है व स्वंय को यादव तथा द्वारावती पुरावधीश्वर[(37)] से सम्बोधित किया है। होयसलों की राजधानी द्वारसमुद्र थी।[(38)] साल को इस राजवंश का आदिपुरूष बताया गया है। 13वीं शताब्दी में वल्लाल द्वितीय (1173 ई० से 1220ई०) शासक बना और वीर

---

(35) History of Nainital District/The Imperial Gazetteer of India/1909/vol-18/ p. 324-325.
(36) O.C.Handa/History of Uttaranchal/p.53
(37) दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास / दुबे (डॉ) हरिनारायण / 198
(38) Prehistoric Ancient and Hindu India/Banerji R.D/p.288

वल्लाल की उपाधि से स्वंय को अलंकृत किया। इसके पश्चात वीर नरसिंह द्वितीय (1220 ई० से 1235 ई०) गद्दी पर बैठा। हेमाद्रि रचित चतुवर्गचिन्तामणि के व्रतखण्ड़ में वर्णित है कि इसे यादव नरेश रामचन्द्र द्वारा पराजित होना पड़ा तथा वीर नरसिहं तृतीय (1235 ई० से 1254 ई०) तक के शासन के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। होयसलों द्वारा 14वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक राज्य किया।

1.2.11 काकतीय राजवंश (1000–1326ई०)

दक्षिण भारत के पूर्वी क्षेत्र में आन्ध्रप्रदेश व वर्तमान तेलंगाना क्षेत्र के अर्न्तगत कल्याणी के चालुक्यों के समय एक नवीन राजवंश का उदय हुआ, जिसे काकतीय राजवंश के नाम से जाना गया, परन्तु साक्ष्यों के आभाव में इस तथ्य को विवादास्पद माना जाता है।[(39)] आरम्भ में काकतीय कल्याणी के चालुक्यों के सामंत थे, इस बात को अवश्य स्वीकार किया जाता है। 1110 ई० में कल्याणी चालुक्यों के साम्राज्य का ही अंग था, जिसके भंग होने पर वारंगल में जाकर स्थापित हुए, वह काकतीय राजवंशी कहलाए तथा इन्हीं से एक होलसय और एक देवगिरि के यादव कहलाए। काकतीय राजवंश द्वारा अपना साम्राज्य का विस्तार कांची तक किया गया। काकतीय वंश में 13वीं शताब्दी के अर्न्तगत 1198 ई० से 1261 ई० के मध्य गणपति के शासन की जानकारी प्राप्त होती है।

1.2.12 देवगिरि के यादव (850–1334ई०)

कल्याणी के चालुक्यों की स्थिति 1150 ई० में दक्कन क्षेत्र में पतन की और अग्रसर हो चुकी थी तथा जब तैलप तृतीय गद्दी पर आसीन हुआ[(40)] तब परिस्थिति और अधिक विषम होने लगी। इस काल में ही नवीन सामंत वर्ग ने अपनी शक्ति का स्वतंत्र रूप से विस्तार आरम्भ किया। जिसमें तीन स्वतन्त्र राजवंशों का अभ्युदय हुआ, जिसमें वारंगल क्षेत्र में काकतीय वर्तमान कर्नाटक व तमिलनाडु का मध्य क्षेत्र में होयसल जिन्हें द्वारसमुद्र के होयसल कहा जाता था[(41)] तथा देवगिरि के यादव, जो वर्तमान महाराष्ट्र के दौलताबाद में स्थापित हुए। आरम्भिक काल में यह सभी चालुक्यों के ही अधीन कार्यरत थे, परन्तु अयोग्य उत्तराधिकारियों के चलते 1150 ई०–1190 ई० से चालुक्यों का पतन आरम्भ हो गया था और इस परिस्थिति

---

(39) दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास/दुबे (डॉ) हरिनारायण/पृ०–309
(40) Prehistoric Ancient and Hindu India/Banerji R.D/p.284
(41) दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास/दुबे (डॉ) हरिनारायण/पृ०–282

का लाभ उठाते हुए नए–नए राजवंशों का उदय होने लगा। देवगिरि के यादव राजवंश का मुख्य उत्कर्ष काल 12वीं से 13वीं शताब्दी के मध्य देखा जाता है। इस वंश के उदय का काल 9वीं शताब्दी के मध्य में हुआ, जो वर्तमान में नासिक से अहमदाबाद के क्षेत्र स्थित है[(42)]।

इस काल के धारवाड़ से प्राप्त कुछ अभिलेखों से यादव सामंतों की जानकारी प्राप्त होती है। यादव राजवंश के इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है, कि वह प्रारम्भिक काल में राष्ट्रकूटों के अधीन थे, तत्पश्चात् यादवों द्वारा चालुक्यों की आधीनता को स्वीकार किया। यादव वंश को लेकर कई प्रकार के मत–मतान्तर तथा कथाएं भी प्राप्त होती है, जिसमें उन्हें रामायण, महाभारत, पुराण के अनुसार यादव वंश के प्रथम राजा ययाति द्वारा उत्पन्न पुत्र यदु की सन्तान माना गया है।[(43)] इस कथन के साक्ष्य की पुष्टि हेमाद्रि द्वारा रचित चतुवर्गचिन्तामणि से की गयी है, जो 1260 ई० से 1270 ई० में रचित एक ग्रन्थ है, तथा इस ग्रन्थ में यादव वंशियों को चंदवशीं क्षत्रिय कहा गया है[(44)] तथा 13वीं शताब्दी में ही भगवत गीता की मराठी भाषा में टीका की गयी, जिसे मराठी संत ज्ञानेश्वर द्वारा सम्पादित किया गया है। संत ज्ञानेश्वर द्वारा यादव नरेश रामचंद्र को चंद्रवंशी क्षत्रिय स्वीकार किया गया है तथा लोककथा व किवदंती से ज्ञात होता है कि यादव लोग मथुरा से द्वारिका की ओर से प्रस्थापित हुए तथा अपने सैन्य कौशल व प्रशासनिक कौशल की नींव पर 9वीं शताब्दी में एक दल का निर्माण किया, जो नासिक के मध्य क्षेत्र से लेकर अहमदाबाद तक के क्षेत्र में निवास करने लगे।

सर्वेऽपि पूर्वमथुराधिनाथाः कृष्णादितो द्वारवतीश्वरास्ते।
सुबाहुसूनोरनुदक्षिणाशाप्रशासिनो यादववंशवीराः।।[(45)]

यादव वंश के धर्म संबंधी विषय में कहा गया है, कि वह शैव तथा वैष्णव धर्म के अनुयायी थे तथा इस राजवंशी के ध्वज पर गरूण तथा सिक्कों पर भी गरुण का चित्र अंकित होने का वर्णन प्राप्त होता है, साथ ही हनुमान की प्रतिमा भी प्राप्त होती है। **पी० बी० देसाई** के

---

(42) The Early History of The Deccan Part-VIII/p.517
(43) दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास/दुबे (डॉ) हरिनारायण/पृ०–282
(44) दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास/दुबे (डॉ) हरिनारायण/पृ०–282
(45)दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास/दुबे (डॉ) हरिनारायण/पृ०–283

अनुसार यादव कन्नड क्षेत्र के मूल निवासी थे, क्योंकि यादव वंश के अभिलेखों से कन्नड़ भाषा की लिपी में लिखित रूप सें प्राप्त होते है। **डॉ० अनंत सदाशिव अल्तेकर** द्वारा महाराष्ट्र के मूल निवासी माना गया है और यह भी कहा है कि अपने वंश को गौरवपूर्ण व समृद्ध दिखाने हेतु स्वयं को मथुरा व द्वारिका के निवासी कहा। यादवों द्वारा स्वयं को "द्वारावतीपुरवराधीश्वर" तथा "विष्णोवंशोद्भव" भी कहा गया है।**(46)**

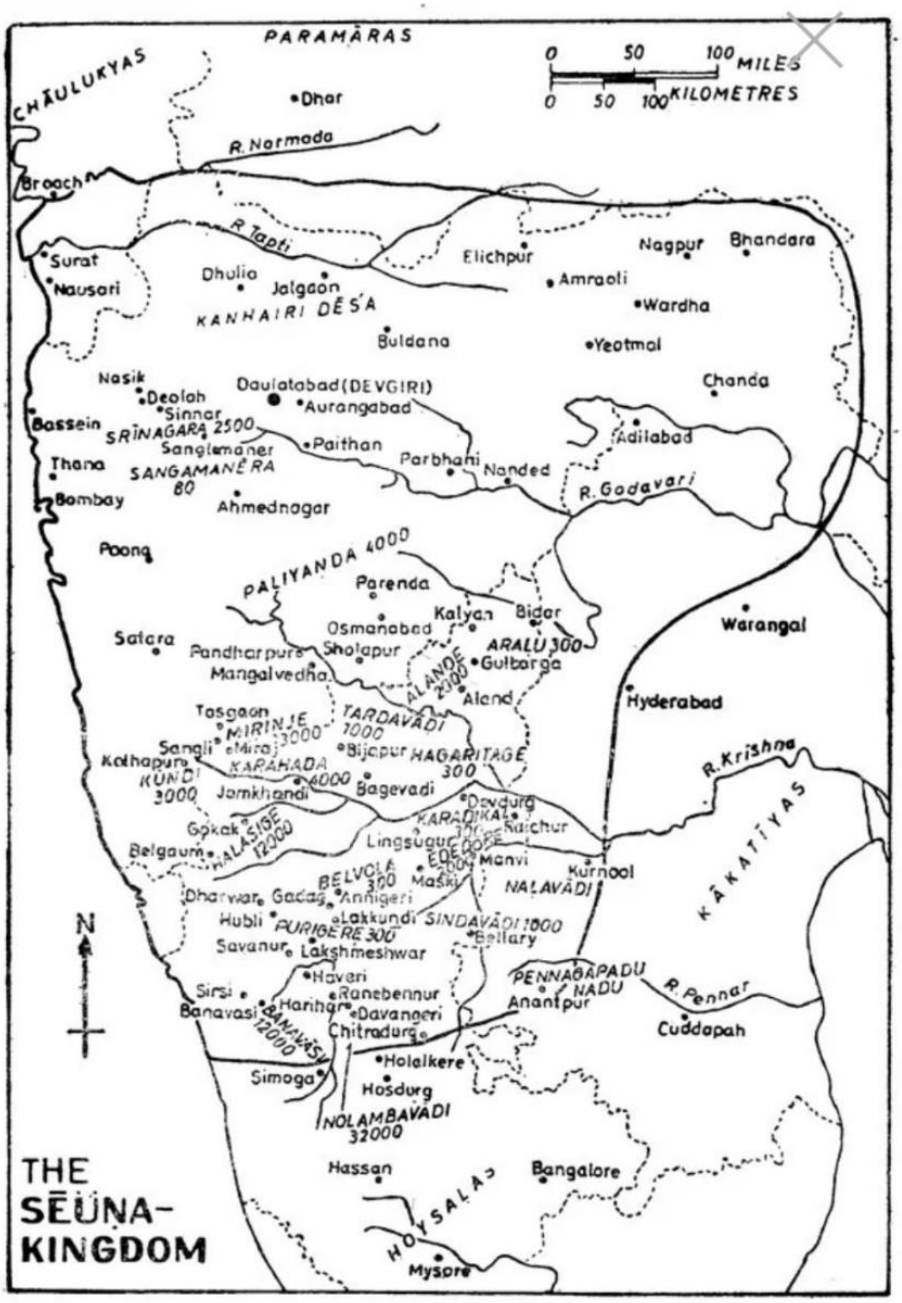

(47)

(46) दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास / दुबे (डॉ) हरिनारायण / पृ०–283
(47) देवगिरि के यादव राजा / बोरा राजमल / नेशनल पब्लिशिग हाएस / पृ०–125

इस प्रकार के वर्णन यादव वंश के विषय जानकारी में प्राप्त होती है। इस राजवंश के प्राथमिक शासकों में दृढ़प्रहार, सउणचंद्र प्रथम, सेउणचंद्र के समस्त उत्तराधिकारी–भिल्लम द्वितीय, वेसुगि, भिल्लम तृतीय, यादुगि, तथा भिल्लम चतुर्थ, सेउणचन्द्र द्वितीय एवं चंद्र द्वितीय आदि के नाम प्राप्त होते है। इस प्रकार 13वीं शताब्दी तक यादव वंश का एक लम्बा इतिहास है। प्रथम स्वतंत्र शासक के रूप में राज्य करने वाला शासक भिल्लम पंचम है, जिसने यादव वंश को गौरवपूर्ण व समृद्धशाली राजवंश बनाया। 1191 ई० से 1210 ई० से के मध्य जैतुगि गद्दी पर अपने अन्तिम दिनों में बैठा, जिसका वर्णन हिमाद्री के चतुर्भुजचिंतामणि में किया है।

1.2.12.1 सिंहण द्वितीय 1210 से 1247

जैतुगि के पुत्र व यादव वंश के उत्तराधिकारी के रूप में एक योग्य शासक की भांति गद्दी पर बैठने से पूर्व ही राजकार्यों व राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेना आरंभ कर दिया था और 1210 ई० में पिता के पश्चात् गद्दी पर बैठा। इसके पश्चात् सैन्य अभियानों को तेज कर अपने व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाया और अपने पिता के सैन्य अभियानों पर विजय प्राप्त कर परिपक्व शासक बना। गद्दी पर बैठने के पश्चात् होयसल के साथ युद्ध, कोल्हापुर के शिलाहरों के साथ युद्ध, मल्लट के हहैय राज्य की विजय, गुजरात की लाट पर आक्रमण और वाघेलों से युद्ध तथा काकतीय से संघर्ष का इतिहास ज्ञात होता है। इस प्रकार से 1210 ई० से 1247 ई० के मध्य का इतिहास इस शोधकार्य की विषयवस्तु का मुख्य केंद्र है, क्योंकि सिंहण, जो कि यादव वंश का वीर व महान शासक था, उसी के काल में ही संगीत के महान ग्रन्थ ''संगीत रत्नाकर'' की रचना हुई।

संगीत रत्नाकर संगीत के समस्त विधाओं का आधार ग्रन्थ है[(48)] और सिंहण नरेश स्वयं एक कला संस्कृत व साहित्य का प्रेमी था तथा स्वयं भी संरक्षण प्रदान करता था और इसी के दरबार में ''संगीत रत्नाकर'' के रचयिता शारंगदेव जी तथा यादव वंश के अंतर्गत ही 13वीं शताब्दी में गोपाल नायक जैसे महान संगीतकार का वर्णन प्राप्त होता है। सिंहण नरेश ने स्वयं भी संगीत रत्नाकर की टीका की थी और राज दरबार के रत्नों के रूप में छंददेव व अनंतदेव जैसे ज्योतिषविदों का भी वर्णन प्राप्त होता है। छंगदेव द्वारा अपने दादा पितामह भास्कराचार्य जी की स्मृति में गुजरात के खानदेश (पाटन) में एक ज्योतिष विद्यालय का

(48) Prehistoric Ancient and Hindu India/Banerji R.D/p.285

निर्माण कराया गया। अनंतदेव द्वारा भी ज्योतिष के महान कृति वाराहमिहिर जो छठी शताब्दी में वृहज्जातक द्वारा रचित ग्रन्थ है, की टीका अनन्तदेव द्वारा की गई।

इस प्रकार से 1247 ई० तक यादव वंश का इतिहास प्राप्त होता है तथा 1318 ई० में इस राजवंश का अंत हो गया था। मध्यकाल को परिवर्तन के काल रूप में भी जाना जाता है। इसके अतिरिक्त भारत में तुर्कों, अरबों आदि विदेशी शक्तियों के प्रवेश का भी वर्णन प्राप्त होता है। उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में अक्रांताओं द्वारा होने वाले आक्रमणों की संख्या कम थी। दक्षिण भारत में आक्रमणों का क्रम मुख्यतः 13वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में देखने को मिलता है। आक्रमणों को आरंभ राज्य विस्तार की नीति के अंतर्गत हुआ, परन्तु इसके पूर्व के राज्यों में होयसल तथा काकतीय जैसे राज्यों में आपसी द्वेष के कारण संघर्ष की स्थिति बनी रहती थी। यादव राजा 1173 ई० तक पश्चिमी चालुक्यों के सामंत थे, जब भील्लम पंचम द्वारा स्वयं को राजा घोषित किया तथा इसके पश्चात् देवगिरी को यादव वंश की राजधानी बनाया।[(49)] तेरहवीं शताब्दी के ग्रन्थों के अनुसार यादव वंश ने स्वयं को श्री कृष्ण के वंशज कहकर संबोधित किया है। हेमाद्री, जो महादेव यादव (1260 ई० से 1270 ई०) का मंत्री व राजकीय लेख प्रमाणों का अधिकारी भी था, उसने अपने ग्रन्थ चतुवर्गचिंतामणि में ''कृष्णकुलोत्पन्न'' कहा है, परन्तु साक्ष्यों से ज्ञात होता है, कि 9वीं शताब्दी के पूर्व यादव वंश चालुक्य तथा होयसल के अधीन सामंत थे, जिन्होंने परिस्थिती का लाभ उठाते हुए, स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया और नर्मदा से तुगंभद्रा के मध्य क्षेत्र में अपने राज्य वंश की स्थापना की, जो वर्तमान में महाराष्ट्र, उत्तरी कर्नाटक तथा मध्यप्रदेश के क्षेत्र तक फैला था। कई शासकों के नाम दृढप्रहार, सेउण चन्द्र प्रथम, भिल्लम द्वितीय, वेसुगि, भिल्लम तृतीय, यादुगि, भिल्लम चतुर्थ, सेउण चन्द्र द्वितीय इत्यादि द्वारा मराठी संस्कृति को जन्म व संरक्षण दे, उसे समृद्धता प्रदान करी।

साथ ही यादव वंश द्वारा संस्कृत व मराठी भाषाओं को भी संरक्षण प्रदान किया गया और कन्नड़ भी इस राजवंश की मुख्य भाषा के रूप में विद्यमान थी, परन्तु सर्वाधिक साहित्य, संस्कृत और मराठी में ही विकसित हुए।[(50)] यादव वंश के अंतर्गत प्राप्त होने वाले साहित्य इस प्रकार है– विवेक सिंधु तथा परममृतिल मुकुद्वराज द्वारा रचित मराठा साहित्य के रूप में

(49) Yadav Dynasty – Founders of Marathi Culture/Anjali Malkar/p.40
(50) Yadav Dynasty – Founders of Marathi Culture/Anjali Malkar/p.41

प्राप्त होते है तथा महिमभट्ट रचित लीलाचरिता, ज्ञानेश्वर द्वारा रचित मराठी भगवत गीता की टीका भगवार्थदीपिका प्राप्त होती है। इस प्रकार ज्ञानेश्वर, नामदेव, जानकी आदि का भी वर्णन प्राप्त होता है। कन्नड़ भाषा के अंतर्गत कमलभव द्वारा संधिश्वर पुराण, कवि अचन्ना द्वारा वर्धमान पुराण, अमुगिदेव द्वारा वाचनास। इस प्रकार के 13वीं शताब्दी में कई ग्रन्थों के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। इस क्रम में एक प्रकाश के समान के सिद्धांत शिरोमणि, करनाकातूहल भास्करचार्य द्वारा लिखा गया, जो गणित व खगोल का महान ग्रन्थ है। चतुवर्गचिंतामणि हिमाद्री द्वारा रचित प्राप्त होती है, जो यादव वशं राजमंत्री द्वारा रचित है। सूक्तमुक्तावली जलहन या याज्ञवल्क्य स्मृति पर टीका व इत्यादि का वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है, कि 13वीं शताब्दी का यह काल साहित्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसमें खगोल, गणित, ज्योतिष, संगीत सभी विषयों पर ग्रन्थों का निर्माण हुआ।[(51)]

1.3 13वीं से 18वीं शताब्दी के मध्य रचित ग्रन्थ

मध्यकालीन ग्रन्थों का एक बृहद इतिहास है। इस शोधकार्य का मुख्य विषय ''संगीत रत्नाकर'' है, जो एक सुप्रसिद्ध मध्यकालीन ग्रन्थ है व इस शोधकार्य का मुख्य उद्देश ''संगीत रत्नाकर'' में तन्त्री वाद्यों के आधुनिक स्वरूप को जानने पर केंद्रित है। इस प्रकार यह जानना आवश्यक हो जाता है, कि तेहरवीं शताब्दी से आधुनिक काल तक आते–आते संगीत के क्षेत्र में किस प्रकार परिवर्तन होते गए और कौन–कौन सी महान रचनाएं हुयी। इसी को जानने के उद्योग (चेष्टा) से शोधार्थी द्वारा तेरहवीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी के मध्य ग्रन्थों को वर्णित करने का प्रयास किया गया है। भारतीय संगीत परम्परा के अर्न्तगत समय–समय पर कई महान ग्रन्थों की रचना शास्त्रकारों व ग्रन्थकारों द्वारा की गयी। इन ग्रन्थों के अर्न्तगत सम्पूर्ण संगीत का सार व क्रमिक विकास दृष्टिपात होता है।

मध्यकाल से आधुनिक काल के मध्य रचित सर्वलोकप्रिय ग्रन्थों का वर्णन प्रस्तुत करने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है, क्योंकि यह सभी ग्रन्थ ही आधुनिक संगीत का आधार है।

(51) Yadav Dynasty– Founders of Marathi Culture/Malkar Anjali/p.44

1.3.1 पालकुरिकी सोमनाथ कृत पंडिताराध्य चरित्र[52]

तेलुगु, कन्नड़, तमिल तथा मलयालम को भाषा–वैज्ञानिकों द्वारा द्रविड़ भाषा के परिवार में स्थान दिया है, जिसकी समृद्ध व भाषा का साहित्य प्राचीन काल से चला आ रहा है। इसमें तमिल व कन्नड़ भाषा का इतिहास तेलुगु भाषा से अधिक पुराना है। तेलुगु भाषा का साहित्यिक इतिहास 12वीं शताब्दी के शिव–उपासक कवियों के साथ समृद्ध हुआ, जिसमें पालकुरिकी सोमनाथ, नन्नेचोड तथा मल्लिकार्जुन पंडित का नाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। नन्नेचोड द्वारा कुमारसंभव, मल्लिकार्जुन पंडित द्वारा शिवतत्वसार तथा पालकुरिकी सोमनाथ द्वारा बसवपुराण तथा पंडिताराध्यचरित्र जैसी अनेक रचनाएं की गई। यह सभी परम शिव भक्त के रूप में विख्यात हुए। जिसमें से पालकुरिकी सोमनाथ का समय 1190 ई० से 1260 ई० के मध्य का बताया जाता है।

पालकुरिकी सोमनाथ का जन्म आंध्र क्षेत्र के वारंगल स्थित पालकुर्ति नाम के एक गांव में पिता विष्णुरामिदेव एवं माता श्रियादेवी के घर में हुआ। पालकुरिकी सोमनाथ ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए, और दक्षिण भारत के कर्नाटक क्षेत्र के वीरशैवमत से प्रभावित हुए और शैवमय हो गए। पंडिताराध्यचरित्र को पालकुरिकी सोमनाथ द्वारा रचित अंतिम कृति के रूप में जाना जाता है। इस रचना में कवि की प्रौढ़ अवस्था का भान होता है, क्योंकि इसके अंतर्गत शुद्ध व परिष्कृत भाषा के स्पष्ट दर्शन होते है। इसे एक प्रकार से विश्वकोष के रूप में स्वीकारा गया है। इस काव्य के अंतर्गत मल्लिकार्जुन पंडित के जीवन–चरित्र को स्थान दिया गया है। इस ग्रन्थ के अंतर्गत पाँच प्रकरण प्राप्त होते है तथा 11910 द्वीपद छंद वर्णित है। इस ग्रन्थ में संगीत की बीस प्रकार की वीणाओं, अवनद्ध वाद्यों में मृदंग आदि की वादन विधि के साथ–साथ गमक, ठाय, नृत्य सभी का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त वैद्यक संबंधित शास्त्रों का भी वर्णन प्राप्त होता है।

इस प्रकार पालकुरिकी सोमनाथ संस्कृत भाषा के साथ–साथ वैद्यक, संगीत तथा नृत्य आदि शास्त्रों के उच्च कोटि के विद्वान व प्रकाण्ड़ पंडित थे तथा संगीत आधारित पंडिताराध्यचरित्र पालकुरिकी सोमनाथ की मातृभाषा तेलुगु भाषा में लिखा गया एक ग्रन्थ है।

---

(52) दक्षिणांचल भक्ति साहित्य (भाग–1)/तेलगु भक्ति काव्य/पृ०–6–21

1.3.2 जयना कृत नृत्य रत्नावली [53]

प्रस्तुत ग्रन्थ काकतीय राजवंश के विषय में सम्पूर्ण जानकारी उपलब्ध कराया गया है। सातवाहनों के पश्चात् आन्द्र क्षेत्र के मुख्य राजवंश के रूप में काकतीय राजवंश का उदय हुआ था। इस राजवंश द्वारा मात्र राजकाज व राजनीति के अतिरिक्त मूर्तिकला व धार्मिक पक्ष को भी संरक्षण दिया व प्रचार–प्रसार किया गया। इस राज का क्षेत्र पूर्व में बंगाल की खाड़ी, दक्षिण में श्रीशैलम, उत्तर में माल्यवंत पर्वत, तथा पश्चिम में कल्याणी तक था। काकतीय शासक गणपति देव का काल 1199 ई० से 1261 ई० के मध्य का काल माना जाता है, इसी के काल में जयना द्वारा नृत्य रत्नावली की रचना की गयी। गणपति देव का जयना के साथ अधिक लगाव था। कहा जाता है, कि जयना अय्यान वंश के थे व येलंदडु में शासन करते थे, जहाँ कृष्णा नदी का बंगाल की खाड़ी में विलय होता था। 1203 ई० में गणपति देव द्वारा जयना के राज्य पर आक्रमण किया और जयना के दादा नारायण नायक द्वारा गणपति देव के वीरता को देखा और सराहना की व अपनी दोनों पुत्रियों नारम्बा तथा परमाम्बा का विवाह भी गणपति देव के साथ सम्पन्न कराया[54], उस समय जयना का एक छोटा बालक था और उसे अपने साथ ले आए तथा उसकी शिक्षा आदि के लिए प्रबन्ध किया। इसके पश्चात् जयना द्वारा ललित कला की शिक्षा प्राप्त की गयी और स्वंय को गणपति देव का सेनापति कहकर सम्बोधित करता था और नृत्य रत्नावली नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ को आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है। जिसमें नृत्य की समस्त भाव, अंग संचालन, मुद्रा तथा शारीरिक व मानसिक ताल–मेल का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, यह एक संस्कृत भाषा का ग्रन्थ है।

1.3.3 राणा हम्मीर देव कृत श्रृंगार हार

13वीं शताब्दीं में पृथ्वीराज चौहान अर्थात् शाकंभरी राजवंश के अंतिम चौहान राजा के रूप में रणथम्भोर के राणा हम्मीर देव चौहान का नाम बड़े गर्व व आदर के साथ लिया जाता है। इन्हें कर्ण की उपाधी से भी सम्मानित किया गया है। साथ ही राणा हम्मीर देव का नाम उसकी हठ के कारण भी याद किया जाता है। हम्मीर देव के पिता का नाम जैत्रसिंह था।[55]

---

(53) Nritta Ratnawali of Jaya Senapati/Rao(Dr.)Pappu Venugopala/p.1-10
(54) दक्षिण भारत का बृहद् इतिहास/दुबे (डॉ) हरिनारायण/पृ०–314
(55) Military History Of India/Sarkar Jadunath/p.33

हम्मीर देव कला, साहित्य, वैदिक संस्थानों आदि के बहुत प्रेम करता था, साथ ही सभी को संरक्षण भी प्रदान करता था। यह एक कर्तव्य निष्ठ राजपूत शासक था, जिसनें मुस्लिम आक्रान्ताओं से राष्ट्र की रक्षा का प्रण लिया था। 1282 ई० में हम्मीर देव गद्दी पर आसीन हुआ और राज्य विस्तार की नीति को आरम्भ किया व कई महान विजयों को भी प्राप्त किया। श्रृंगारहार एक सांगीतिक ग्रन्थ के साथ–साथ, उस काल को जाननें को भी एक उत्तम माध्यम है। हम्मीर देव के काल में कई ग्रन्थें व महाकाव्यों का भी वर्णन प्राप्त होता है, परन्तु श्रृंगारहार एक मात्र ऐसा ग्रन्थ है, जिसे स्वंय हम्मीर देव द्वारा रचा गया। अन्य कई महाकाव्य भी प्राप्त होते है, जिसमें नयनचंद्र द्वारा हम्मीर महाकाव्य व जोधाराज द्वारा हम्मीर रासों का वर्णन प्राप्त होता है। हम्मीर देव द्वारा स्वयं जिस ग्रन्थ की रचना की गयी, उसे श्रृंगारहार के नाम से जाना जाता है। इस ग्रन्थ के अंतर्गत 120 तालों का वर्णन प्राप्त होता है, साथ ही एकतंत्री, आलापनी, किन्नरी जैसी वीणाओं तथा अन्य वाद्यों आदि का वर्णन व उनके गुणों का वर्णन भी प्राप्त होता है।

1.3.4 शारदातनय कृत भावप्रकाशन[(56)]

शारदातनय कृत भावप्रकाशन की रचना द्वारा 1250 ई० के मध्य की गई। यह संस्कृत भाषा का ग्रन्थ है, जो नाट्यशास्त्री परंपरा पर आधारित एक अभूतपूर्व ग्रन्थ है। शारदातनय द्वारा अपने से पूर्व के आचार्यों बृद्धभरत, भरत, अभिनव गुप्ता आदि द्वारा वर्णित ज्ञान को अध्ययन के माध्यम से आत्मसात करने के पश्चात्, इस ग्रन्थ की रचना की गई, जो भावप्रकाशन ग्रन्थ के अंतर्गत स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। शारदातनय द्वारा नाट्य की उत्पत्ति के संदर्भ में व्यास द्वारा वर्णित मतों को, रस की उत्पत्ति के लिए वासुकि के मतों को, साथ ही रस के लिए नारद को भी शामिल किया गया है। इस ग्रन्थ पर टीका नहीं प्राप्त होती, शारदातनय जी संगीत की प्रत्येक विधा गायन, वादन, नृत्य व नाट्य में पारंगत थे, तथा देशाटन द्वारा ज्ञानार्जन किया व भावप्रकाशन की रचना की, जिसमें नाट्य तत्व तथा काव्य तत्व दोनों का सामान सम्मिश्रण किया गया। 13वीं शताब्दी के इस ग्रन्थ में शारदातनय द्वारा उस काल में मौजूद सभी ग्रन्थों के सार को उदारतापूर्वक अपनाते हुए, एक ही माले में मनके के समान गूंथकर इस ग्रन्थ की रचना की गयी। शारदातनय जी के जन्म संबन्धित अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती, परन्तु ग्रन्थ के मंगलाचरण में वर्णित है कि आर्यावृत्त के मेरुत्तर नामक

(56) भाव प्रकाशन–शारदातनय, प्राच्य विद्या मदिंर, बडौदा–1968

महाजनपद में जन्म हुआ था और वर्णित है, कि माण्रपूज्य नामक ग्राम जहां एक हजार ब्राह्मण रहते थे, वहां एक कश्यप गोत्र वंश से उत्पन्न लक्ष्मण नाम के ब्राह्मण निवास करते थे, वहीं शारदातनय के प्रमितामह थे। मेरूत्तर जनपद को भूवैज्ञानिकों को द्वारा आधुनिक मेरठ उत्तर प्रदेश में स्थित माना है, परन्तु इस ग्रन्थ की पांडुलिपि दक्षिण भारत में प्राप्त होने के कारण मेरूत्तर व माण्रपूज्य दक्षिण में ही किसी प्राचीन ग्राम का नाम होना भी संभव है, इस कारण शारदातनय का जन्म स्थान दक्षिण भारत माना जाता है। पितामह द्वारा वेद भूषण नामक वैदिक भाषा को तैयार किया गया था। इस प्रकार 13वीं शताब्दी में भावप्रकाश का वर्णन प्राप्त होता है, जो एक संगीत नाटक परंपरा पर आधारित एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

1.3.5 आचार्य पार्श्वदेव कृत संगीत समासार

संगीत की दृष्टि से संगीत समयसार पार्श्वदेव रचित तेरहवीं शताब्दी का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जो प्राचीन से वर्तमान तक होने वाले संगीत परिवर्तनों की सूचना प्रदान करने वाला है। पार्श्वदेव जैन आचार्य थे, जिनका गोत्र श्रीकंठ तथा पिता आदिदेव व माता गौरी का वर्णन प्राप्त होता है। वह पार्श्वदेव के गुरु का नाम महादेवार्य प्राप्त होता है।[(57)] पार्श्वदेव द्वारा इस ग्रन्थ में संगीत के समस्त सिद्धन्तों व उनके लक्षणों का पूर्ण वर्णन किया गया है, जिससे यह ज्ञात होता है, कि जैन आचार्यों द्वारा कला में रुचि के साथ ज्ञान का भी भंडार था। संगीत समयसार के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पार्श्वदेव द्वारा अपने पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के ज्ञान को एक कर संगीत के इस सार को एकत्र किया गया है। साथ ही इस ग्रन्थ में जग्देकमल द्वारा रचित संगीतचूड़ामणि में निर्दिष्ट ज्ञान को समाहित किया गया है। कोहल द्वारा जिन मतों को प्रस्तुत किया गया है, उन्हें पार्श्वदेव द्वारा विनम्र भाव व सहज शब्दों में उनको व्याख्यित कर अनित्य व अव्यापक कह खंडन किया गया है।[(58)] इस ग्रन्थ को नौ अध्यायों में विभाजित किया गया है तथा अध्यायों को अधिकरण कहा है।

प्रथम अधिकरण का शुभारंभ मंगलाचरण कर मां सरस्वती की वंदना प्रस्तुत की गई है, व पूर्वाचार्यों तथा पार्श्वदेव जी के स्वयं के वंश, जाति, गोत्र व देश–मार्गी संगीत के विषयों को वर्णित किया गया है। साथ ही संगीत के प्रत्येक खंड की चर्चा प्रस्तुत की गई है, जैसे वाद्य, गीत, राग, गायन–वादन गुण तथा दोष इत्यादि का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय

---

(57) हमारे संगीत रत्न/गर्ग लक्ष्मी नारायण/पृ०–24
(58) आचार्य पार्श्वनाथ कृत सांगीत समयसार/सम्पादन व अनुवादक–आचार्य बृहस्पति/पृ०–54

अधिकरण के अर्न्तगत मतंग वर्णित लक्षणों व देशी को शुद्ध कहा गया है व सालग के भेदों को वर्णित किया गया है। तृतीय अधिकरण में राजा भोज तथा सोमेश्वर आदि राजाओं द्वारा वर्णित ठायों का वर्णन किया गया है। चतुर्थ अधिकरण में रागांग, भाषांग, उपांग तथा क्रियांग को बताया है। पंचम अधिकरण में प्रबंधों को वर्णन मिलता है, जिसमें उनके नाम तथा लक्षण सम्मिलित है। षष्ठम् अधिकरण वाद्यों पर आधारित है। इसमें वाद्य वर्गीकरण व वाद्यों की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। सप्तम् अधिकरण नृत्य को समर्पित है व पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया गया है। अष्टम् अधिकरण को गायन, वादन तथा नृत्य का वर्णन करते हुए, आरम्भ किया गया है तथा ताल मान गणना विधि लय आदि को वर्णित किया गया है। अन्तिम अध्याय नवां अधिकरण संगीत के समस्त नियमों, योजनाओं तथा गुण–दोषों को व्याख्यित करता है। इस प्रकार संगीतसमयसार 13वीं शताब्दी में रचित एक महान व महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।[(59)]

1.3.6 वाचनाचार्य सुधाकलश कृत संगीतोपनिषत्सारोद्धार

संगीतोपनिषत्सारोद्धार वाचनाचार्य सुधाकलश द्वारा रचित एक ग्रन्थ है, जिसकी चार पांडुलिपि ज्ञात हुई है, जिनमें से एक बड़ौदा स्थित गायकवाड़ और प्राच्य विद्यालय में उपस्थित है, जिसका संपादन वी०जे० संदेसादा द्वारा किया गया है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल चौदवीं शताब्दी के मध्य में माना जाता है अर्थात 1350 ई० के आसपास। सुधाकलश एक दार्शनिक व शास्त्रकार थे, व वाक्पटुता के कारण तथा तर्कशास्त्र की अद्भुत कला में प्रवीण होने के कारण वचानाचार्य की उपाधि प्राप्त थी।[(60)] सुधाकलश जैन आचार्य में से एक थे। प्रस्तुत ग्रन्थ पूर्ण रूप से संगीत संबंधित है जिसमें संगीत संबंधित उपनिषदों के ज्ञान का सार है, जो कि इसके नाम से ही ज्ञात होता है।

संगीतोपनिषत्सारोद्धार शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है संगीत अर्थात् गायन, वादन नृत्य के ज्ञान से परिपूर्ण, उपनिषद का अर्थ है– पास बैठकर प्राप्त किया गया ज्ञान व सारोद्धार का अर्थ है–ऐसा सार जिसकी प्राप्त से जीवन का उद्धार हो जाए अर्थात् इसके अर्थ को शोधार्थी द्वारा इस प्रकार समझा व ग्रहण किया गया है कि संगीत का ऐसा ज्ञान जिसमें समीप बैठ कर प्राप्त होने वाले ज्ञान से जीवन का उद्धार संभव हो। इस ग्रन्थ में पाँच अध्याय होने ही

---

(59) ग्रन्थ सारामृत / जौहरी(डॉ०)रेनू / पृ०–27
(60) आचार्य पार्श्वनाथ कृत सांगीतसमयसार / सम्पादन व अनुवादक–आचार्य बृहस्पति / पृ०–26

जानकारी प्राप्त होती है। जो की इस प्रकार है–प्रथम अध्याय गीत प्रशासन, द्वितीय अध्याय ताल प्रशासन, तृतीय अध्याय राग प्रशासन, चतुर्थ अध्याय वाद्य प्रशासन व पंचम अध्याय नृत्योडोपाड। प्रथम अध्याय गीत प्रशासन गायन सम्बधित जानकारी प्रदान कराता है व इसमें पारिभाषिक शब्दावली को प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अध्याय ताल आधारित है जिसमें लय, ताल गति इत्यादि को वर्णित किया है। तृतीय अध्याय राग प्रशासन में राग तथा जन्य रागों को बताया है, साथ ही उनके लक्षणों को वर्णित किया गया है। चतुर्थ अध्याय वाद्य प्रशासन वाद्य आधारित है, जिसमें वाद्यों के लक्षण आदि को विस्तार से बताया गया है। पंचम अध्याय नृत्योडोपाड, जो नृत्य आधारित जानकारी उसके लक्षण, मुद्राओं व अंग संचालन को बताया गया है।[(61)] इस प्रकार संगीतोपनिषत्सारोद्धार संगीत के क्षेत्र का एक महान ग्रन्थ जिसे सुधाकलश द्वारा रचा गया। जिसमें संगीत के गूढ़ रहस्य व लक्षण प्राप्त होते है।

1.3.7 पं० लोचन कृत रागतरंगिणी[(62)]

पं० लोचन कृत रागतरंगिणी के काल को लेकर अनेकों मतभेद है। कुछ 14वीं शताब्दी, कुछ विद्वान इसे 15वीं शताब्दी तथा कुछ विद्वानों के अनुसार इसका समय 17वीं शताब्दी में 1685 ई० से 1725 ई० के मध्य का मानते है तथा विद्वानों द्वारा पं० लोचन कृत रागतरंगिणी के विषय में कहा गया है, कि यह मिथिला नरेश महिनाथ ठाकुर के अनुज नरपति ठाकुर के आज्ञानुसार इस ग्रन्थ की रचना की गई। इस ग्रन्थ के अंतर्गत संगीत के सभी पक्ष के विषयों में जानकारी प्रदान की गयी है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत संगीत तथा साहित्य का समन्वय अत्यन्त सुव्यवस्थित व सन्तुलित रूप से किया गया है। इस ग्रन्थ में राग लक्षण, राग–रागिनी स्वरूप, संस्कृत भाषा, ब्रज भाषा तथा उनके उदाहरणों को मिथिला के लोकगीतों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ की रचना पूर्ण रूप से मैथिली संगीत के अनुरूप ही की गयी है। मिथिला नरेश द्वारा संगीत व कला को सदैव ही प्रोत्साहन प्रदान किया गया। पं० लोचन द्वारा ग्राम, मूर्च्छना तथा जाति गायन के स्थान पर ठाट पद्धति का वर्णन प्रस्तुत करते हुए, निबद्ध तथा अनिबद्ध का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। पं० लोचन द्वारा 12 थाटों का वर्णन प्रस्तुत हुए, 75 जन्य राग माने व स्वरों के अनुसार ही उनका गायन समय

---

(61) ग्रन्थ सारामृत/जौहरी डॉ० रेनू/पृ०–25–27
(62) लोचन कृत राग तरंगिणी(रागों एंव रसों का आलोचनात्मक अध्ययन)/सहाय डॉ० रीना/पृ०–xi

भी निर्धारित किया गया है तथा मिश्र रागों के विषय में भी विस्तृत जानकारी दी गई है।[63] इसके अतिरिक्त लोचन द्वारा सर्वप्रथम सप्तक के रूप में शुद्ध व कोमल स्वरों का प्रयोग किया गया।

1.3.8 पंडित दामोदर कृत संगीत दर्पण[64]

संगीत दर्पण संस्कृत भाषा में रचित ग्रन्थ है। संगीत दर्पण के लेखक पंडित दामोदर है। संगीत दर्पण के आरम्भिक श्लोकों के अर्न्तगत इस ग्रन्थ के रचयिता के विषय में स्पष्ट वर्णन किया गया है। दामोदर पण्डित के पिता पं० लक्ष्मीधर थे, परन्तु दामोदर पण्डित के विषय में अधिक जानकारी नहीं प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ की रचना जहाँगीर के काल में हुई है, जिसका फारसी, गुजराती तथा हिंदी में अनुवाद किया जा चुका है। संगीत कार्यालय हाथरस के माध्यम से प्रकाशित हिन्दी अनुवाद के अर्न्तगत दो अध्यायों की जानकारी प्राप्त होती है, परन्तु संगीत दर्पण के मूल पाठ में छः अध्यायों का वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें– स्वराध्याय, रागाध्याय, प्रबन्धाध्याय, वाद्याध्याय, तालाध्याय, व नृत्याध्याय।[65]

संगीत कार्यालय हाथरस द्वारा प्राकाशित ग्रन्थ में दो अध्याय है, प्रथम स्वर अध्याय जिसमें पारिभाषिक शब्दावली, नाद उत्पत्ति, स्वर, ग्राम, श्रुति, मूर्च्छना तथा 32 तानों को वर्णित किया गया है। इसमें तान के सम्बन्ध में खण्डमेरू आदि का भी वर्णन किया गया है तथा द्वितीय अध्याय में रागांग, भाषांग आदि का स्पष्ट वर्णन करते हुए व्याख्यित किया गया है। पंडित दामोदर द्वारा इस ग्रन्थ की रचना से पूर्व सभी पूर्वाचार्यों के मतों व सिद्धांतों का गहन अध्ययन किया गया है। साथ ही इसके कुछ भागों में संगीत रत्नाकर की छाया ज्यों की त्यों स्पष्ट प्राप्त होती है। जिसने ग्रन्थ को लोकप्रिय बनाने में सहायता प्रदान की। इस प्रकार संगीत दर्पण एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है व समस्त संसार को नाद पर आधारित माना है। दामोदर पण्डित द्वारा रागों के देवता व स्वरों के रंगों का भी वर्णन किया गया है, जिन्हें वर्तमान रागों के अनुरूप उपयोगी नहीं माना गया है। राग–रागनी वर्णन तथा रागों के ध्यान के विषय में

---

(63) संगीत विशारद/बसन्त/गर्ग लक्ष्मी नारायण/
(64) दामोदर पण्ड़ित कृत संगीत दपर्ण/भट्ट डॉ० विश्वम्भरनाथ/पृ०–1
(65) हमारे संगीत रत्न/गर्ग लक्ष्मी नारायण/पृ०–19

वर्णन प्रस्तुत किया गया है। पं० दामोदर जितने भी राग का वर्णन किया गया है, उन सभी का आधार मूर्च्छना ही है।[66]

1.3.9 आर्चाय शुभांकर कृत संगीत दामोदर[67]

इस ग्रन्थ की रचना 15वीं शताब्दी में की गयी, जो आर्चाय विश्वनाथ द्वारा 14वीं शताब्दी में रचित साहित्य दर्पण के ही सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन है। साथ ही नौ रसों के अतिरिक्त भी रसों का वर्णन किया है। आर्चाय शुभांकर वैष्णव धर्म का पालन करते थे। शुभांकर द्वारा इस ग्रन्थ की रचना अपने पुत्रों को संगीत व नाट्य का ज्ञान प्रदान कराने के उद्देश्य से की। प्रस्तुत ग्रन्थ के अर्न्तगत नाट्यशास्त्र, संगीत रत्नाकर, नाट्यदर्पण, नाट्यालोचन, संगीतचूड़ामणि जैसे सभी ग्रन्थों के ज्ञान को आत्मसात किया है। इस ग्रन्थ के अर्न्तगत अध्यायों को स्तबक कहा है। इसे पाँच स्तबक मे विभाजित किया गया है। प्रथम स्तबक के अर्न्तगत मंगलाचरण, भावनिरूपण व स्थायी भावों के तैंतिस संचारी भावों आदि का वर्णन प्राप्त होता है। इसके पश्चात् द्वितीय अध्याय नाट्य आधारित है व इस अध्याय के उत्तरार्ध में संगीत का वर्णन प्रस्तुत किया है। तृतीय स्तबक में सांगीतिक लक्षणों का को विस्तृत रूप में वर्णित किया है, जिसके अर्न्तगत निरूक्ति, स्वर, जाति, गमक, मूर्च्छना, ग्राम इत्यादी को वर्णित किया है। इस प्रकार चौथे स्तबक के अर्न्तगत बाईस श्रुतियों व उनका व्याख्यान प्रस्तुत किया गया है। साथ ही उसके लक्षण गुण आदि को विस्तार से बताया गया है। नाट्य के विषय में भी चर्चा की है, जिसमें गुण–दोष व अभिनय के विभिन्न पात्रों की भूमिका का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् वाद्यों की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है, जिसके अर्न्तगत तत्, सुषिर, घन तथा अवनद्ध वाद्य सम्मिलित है। नाट्य में प्रयोग होने वाले अंगहारों छः अंगों, तेइस उपांगों दस प्रत्यंगों व भरत मुनि द्वारा वर्णित समस्त नाट्य के लक्षणों आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है व नृत्य का वर्णन करते हुए, ताण्ड़व तथा लास्य का भी वर्णन आर्चाय शुभांकर जी द्वारा किया गया है, जिसमें उनके भेंद, लक्षण आदि को भी वर्णित किया है।

नाट्यशास्त्र वर्णित समस्त अध्यायों के विधान भी वर्णित किए गए है, जिनमें मंडलविधान, रंगविन्यास, नाट्योत्पत्ति, पूर्वरंगविधान इत्यादि सम्मिलित है। अन्त में पंचम् स्तबक के अर्न्तगत

---

(66) दामोदर पण्ड़ित कृत संगीत दपर्ण–एक विहंगावलोकन/अंभोरे डॉ० अर्चाना माधव/पृ०–1–4
(67) नाट्यम्/त्रिपाठी राधवल्लभ/पृ०–75

गायन में होने वाले दोषों, लय के भेंदों, इत्यादि के साथ ही रसों की व्याख्या की गयी है। भरत मुनि द्वारा अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र के अर्न्तगत आठ रसों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है जिसमें आर्चाय शुभांकर द्वारा ''शान्त'' को एक नवीन रस के रूप में स्वीकार करते हुए, उसे व्याख्यित किया गया है, और रस के सभी स्थायी भावों, संचारी भावों, वर्ण तथा देवता की भी चर्चा अपने इस ग्रन्थ में प्रस्तुत की है। साथ ही वात्सल्य को भी रस का रूप मानने की बात आचार्य शुभांकर जी द्वारा कही गयी है। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ की जानकारी व महत्व का बोध होता है।

1.3.10 पुंडरीक विट्ठल कृत सद्रागचंद्रोदय, रागमाला रागमंजरी तथा नर्तन निर्णय

पुंडरीक विट्ठल को एक कुशल, विद्वान, यशस्वी तथा प्रतिभासम्पन्न लेखक के रूप मे स्वीकारा जाता है। पुंडरीक विट्ठल द्वारा कई संगीत ग्रन्थों की रचना की गयी, जिसमें सद्रागचंद्रोदय, रागमाला, रागमंजरी तथा नर्तन निर्णय सम्मिलित है। सद्रागचंद्रोदय, रागमाला, रागमंजरी, राग आधारित ग्रन्थ है तथा नर्तन निर्णय पूर्णतः नृत्य को समर्पित ग्रन्थ है। पुंडरीक विट्ठल द्वारा अपने ग्रन्थों में 10 थाटों से अट्ठावन रागों का निर्माण बताया गया है। विट्ठल द्वारा गति का मान एक श्रुति कहा गया है। साथ ही पारिभाषिक शब्दावली का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। राजा मानसिंह तोमर के राजाश्रय होने के कारण यह ज्ञात होता है, कि पुंडरीक विट्ठल का काल 1486 ई० से 1516 ई० के मध्य का है। यह एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ होने के साथ–साथ गायक भी थे। वह जामदगन्य गोत्र के ब्राह्मण थे, जिनका निवास स्थान मद्रास (मैसूर) के रामानाऊ जिले के सात्तनूर ग्राम में स्थित था।[(68)] आजीविका चलाने हेतु उत्तर भारत की ओर आ गए सर्वप्रथम बुरहानपुर पहुँचे, जो खानदेश की राजधानी था, वहां के राजा द्वारा उत्तर भारतीय संगीत को व्यवस्थित करने का आदेश प्राप्त हुआ और इसके पश्चात् सद्रागचन्द्रोदय की रचना की। इसके पश्चात् मानसिंह तोमर के संरक्षण में पहुँचे और राजा मानसिंह के साथ ही अकबर से भी भेंट की और राग मंजरी की रचना की, जिसमें स्वर स्थानों का पूर्व विवेचन प्रस्तुत किया गया। जिसकी प्रशंसा स्वंय अकबर द्वारा भी की गयी। रागमाला व नर्तन निर्णाय पुंडरीक विट्ठल के अन्तिम दिनों की कृति माना जाती है।[(69)]

---

(68) हमारे संगीत रत्न/गर्ग लक्ष्मी नारायण/पृ०–29
(69) भारतीय संगीत कोष–भाग–2/मिश्रा प्रो० देवेन्द्र/पृ०–494

1.3.11 महाराणा कुम्भा कृत संगीत राज

महाराणा कुम्भा का काल 1433 ई० से 1468 ई० के मध्य मेवाड़ के शासक के रूप जाना जाता है। महाराणा कुम्भा के पिता का नाम मोकल तथा माता का नाम सौभाग्य देवी था।[(70)] महाराणा कुम्भा की गिनती राजस्थान के महान राजाओं में होती है। राणा कुम्भा एक महान विद्वान थे, जिसे कई विषयों का ज्ञान प्राप्त था, जिनमें वेद, स्मृति, मीमांसा सूड़ प्रबंध इत्यादी सम्मिलित है। साथ ही कई साहित्यकारों व विद्वानों को आश्रय भी प्रदान किया था। राणा कुंभा एक कुशल व श्रेष्ठ शासक होने के साथ–साथ कला प्रेमी भी थे। राणा कुंभा को खिलजी के साथ काफी संघर्ष करना पड़ा। यह स्थापत्य कला का भी स्वर्ण युग था। राणा कुंभा वीणा वादन में भी पारंगत थे। राणा कुम्भा द्वारा गीतगोविन्द की व्याख्या रसिक पिया नाम से की गयी तथा चंड़ीशतक, कामराज, रतिसार इत्यादि की रचना की गयी। संगीत राज महाराणा कुम्भा की सबसे महत्वपूर्ण कृती मानी जाती है। जिसकी रचना 1509 ई० में चित्तौड़ में की गयी जिसका वर्णन कीर्ति–स्तम्भ प्रशस्ति में प्राप्त होता है।[(71)] संगीत राज नामक इस ग्रन्थ को पाँच अध्यायों अर्थात् उल्लासों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार है– पथ रत्नकोष, गीत रत्नकोष, वाद्य रत्नकोष, नृत्य रत्नकोष तथा अस्सी परीक्षणों का वर्णन प्राप्त होता है। संगीत राज ग्रन्थ में रस निष्पत्ति सम्बन्धित वर्णन में महाराणा कुम्भा द्वारा भरत मुनि के विचारों व दृष्टिकोण को आत्मसात किए जाने की झलक स्पष्ट परिलक्षित होती है।

1.3.12 राजा मानसिंह तोमर कृत मानकौतुहल[(72)]

ग्वालियर क्षेत्र का नाम संगीत के लिए अत्यन्त विशिष्ट तथा महत्वपूर्ण माना जाता है। तोमर राजवंश को पूर्णतः स्थापित करने का श्रेय जाता है जिसका राज्यकाल लगभग एक शताब्दी तक रहा। तोमर वंश के शासक राजनीति, शासन, व योद्धा होने के साथ ही कला व साहित्य के प्रेमी व संरक्षक के रूप में भी जाने जाते है। मानकौतुहल के रचनाकर राजा मानसिंह तोमर द्वारा 1486 ई० से 1516 ई० के मध्य मध्य शासन किया गया,[(73)] जो एक उच्चकोटी के संगीत के विद्धान तथा संगीतज्ञ भी थे। राजा मानसिंह तोमर द्वारा कई गायकों तथा

---

(70) महाराणा कुम्भा / सोमानी रामवल्लभ / पृ०–36
(71) महाराणा कुम्भा / सोमानी रामवल्लभ / पृ०–361
(72) हमारे संगीत रत्न / गर्ग लक्ष्मी नारायण / पृ०–45
(73) The Penguin History of Early India: From the Origins to AD 1300/ Thapar Romila/p. 179

वादकों को संरक्षण प्राप्त हुआ, जिनमें बैजुबांवरा, बख्शु, चरजु इत्यादि शामिल है। राजा मानसिंह तोमर द्वारा ध्रुवपद का अविष्कार, उसकी रचना तथा प्रचार–प्रसार तब आरम्भ किया गया, जब शास्त्रीय गायन में लोगों की रूचि कम होने लगी और अन्य गायकों आदि के द्वारा ईरानी संगीत के मिश्रण से नवीन रचनाओं का आरम्भ हो रहा था।

ध्रुवपद एक जोरदार गायन शैली मानी जाती है,[74] जिसके गीतों की रचना उर्दू हिंदी तथा ब्रजभषा में अधिक पाई जाती है। राजा मानसिंह तोमर द्वारा समस्त उच्चकोटी के गायकों, वादकों की सहायता से राग निर्माण व उनकी सम्पूर्ण विस्तार विधि को लिपिबद्ध कर मानकौतुहल नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसका 1673 ई० में फकीरूल्ला द्वारा ''राग दर्पण'' नाम से फारसी में अनुवाद किया गया। इस ग्रन्थ के कारण ही ग्वालियर का नाम संगीत के क्षेत्र में जाना गया। फकीरूल्ला द्वारा राजा मानसिंह तोमर के विषय में लिखा गया है, कि ध्रुवपद का अविष्कार करने के लिए संगीत का क्षेत्र सदैव ही आभारी रहेगा। राजा मानसिंह तोमर द्वारा मानकौतुहल की रचना गयी जो द्वारा एक उत्तम गायक, वादक तथा रचयिता थे जिन्हें व्याकरण, पिंगल, अलंकार, रस, भाव आदि का गूढ़ ज्ञान था। राजा मानसिंह तोमर द्वारा संर्कीण रागों का अधिक प्रयोग देखा गया है। राजा मानसिंह तोमर द्वारा अपनी रानी गुर्जरी के नाम पर कई रागों का निर्माण किया गया जैसे गुजरी, मालगौरी आदि। नायक बख्शु मानसिंह तोमर के दरबारी संगीतज्ञ थे, जिनका नाम तानसेन के पश्चात् द्वितीय महत्वपूर्ण व प्रसिद्ध गायकों के रूप में जाना जाता है। राजा मानसिंह एक प्रसिद्ध व महान राजा के साथ–साथ एक महान संगीतकार भी थे तथा राजा मान सिंह द्वारा ही पुंडरीक विट्ठल को भी राज आश्रय प्राप्त हुआ।

1.3.13 रामामात्य कृत स्वरमेलकलानिधि[75]

16वीं शताब्दी में रामामात्य जो विजयनगर साम्राज्य के अंतर्गत दक्षिण भारतीय संगीत के विद्वान थे के द्वारा इस ग्रन्थ की रचना की गई। संगीत की दक्षिण भारतीय पद्धति पर आधारित एक मध्यकालीन ग्रन्थ है। जिसे रामामात्य द्वारा शक संवत् 1472 ई० अर्थात् 1550 ई० में लिखा गया। रामामात्य संगीत के उच्चकोटी के विद्वान व संगीतज्ञ माने जाते है। रामामात्य के पिता तिम्बराज थे, जो विजयनगर साम्राज्य में राजा सदाशिव राय के दरबार में

---

(74) धृपद–शाश्वत गायन शैल / अंभोरे डॉ० अर्चनामाधव / Golden Research thoughts Volume 2, Issue.1/ p.2
(75) रामामात्य कृत स्वरमेलकलानिधि / भट्ट डॉ० विश्वम्भरनाथ / पृ०–5

प्रधानमन्त्री के पद पर कार्यरत थे, व रामामात्य का वास्तविक नाम राम था, परन्तु पिता तिम्बाराज का मंत्री पद राम को प्राप्त हुआ और मंत्री का आमात्य कहा जाता था जिस कारण राम के नाम को आमात्य की पद्वी से सुशोभित किया गया और वह रामामात्य के नाम से जाने गए। इस साम्राज्य के अर्न्तगत ही रामामात्य द्वारा संस्कृत भाषा में स्वरमेलकलानिधि की रचना की गयी।[(76)] राग, ठाट व स्वरों के शुद्ध व विकृत स्वरूप का विस्तार से वर्णन किया गया है। रामामात्य संगीत रत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ के पौत्र थे।

इस ग्रन्थ में को पाँच अध्याय में वर्णित किया गया है–प्रथम अध्याय उपोद्घात प्रकरण, स्वर प्रकरण, वीणा प्रकरण, मेल प्रकरण तथा राग प्रकरण है।[(77)] प्रथम अध्याय उपोद्घात प्रकरण के अंतर्गत ग्रन्थ की जानकारी तथा उसके विषय में वर्णन प्रस्तुत किया गया है। स्वर प्रकरण के अंतर्गत गंधर्व व गान का वर्णन प्रस्तुत करते हुए, परिभाषाओं का वर्णन किया गया है। साथ ही सात शुद्ध व सात विकृत स्वर कहे है। वीणा प्रकरण के अंतर्गत वीणा पर स्वरों की स्थापना की गई है, जिसमें वीणा के दंड पर कुल चौदह स्वरों की स्थापना करने का वर्णन किया गया है। मेल प्रकरण के अंतर्गत थाटों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें 20 थाटों के शुद्ध व विकृत स्वरों सहित वर्णन किया गया है। राग प्रकरण के अंतर्गत थाटों के 20 प्रकारों से 63 जन्य रागों का वर्णन किया गया है। साथ ही देशी व मार्गी रागों का भी वर्णन प्रस्तुत किया गया। वर्तमान में प्रयोग किए जाने वाले राग मुख्य रूप से रामामात्य के देशी रागों के अर्न्तगत व्याख्यित होते है। इस प्रकार संगीत ग्रन्थों में स्वरमेलकलानिधि को एक महान ग्रन्थ के रूप में स्वीकारा गया।

1.3.14 पं० अहोबल कृत संगीत पारिजात[(78)]

पं० अहोबल द्रविड़ ब्राह्मण थे व पं० अहोबल संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान पं० कृष्ण के पुत्र थे। पिता द्वारा ही पं० अहोबल की संस्कृत भाषा की शिक्षा दिक्षा आरम्भ हुयी। शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात् उत्तर भारत की ओर अग्रसर हुए और घनबड (धनबाद) नामक नगर में निवास किया और उत्तर भारतीय संगीत को कठोर तप के साथ आत्मसात किया। तत्पश्चात् इस

---

(76) हमारे संगीत रत्न/गर्ग लक्ष्मी नारायण/पृ०–51
(77) ग्रन्थ सारामृत/जौहरी डॉ० रेनू/पृ०–29
(78) पंडित अहोबलविरचित संगीत पारिजात/संपादक व अनुवादक–श्रीकृष्ण डॉ० ''जुगनु''/पुरोवाक्

नगर के राज के दरबारी गायक बन गए और संगीत पारिजात की रचना की।[(79)] 17वीं शताब्दी के उत्तरार्ध अर्थात 1665 ई० में पं० अहोबल द्वारा इस ग्रन्थ की रचना की गयी। पं० अहोबल को 17वीं शताब्दी के प्रतिनिधी ग्रन्थकार के रूप में स्वीकारा जाता है।

पं० अहोबल द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ में 500 श्लोकों को स्थान दिया गया है, जिसमें सांगीतिक परिभाषा, मार्गी व देशी राग व तालों का वर्णन, नाद की उत्पत्ति के लिए हृदय की 22 नाडियों का वर्णन, श्रुतियों की पूर्ण विवेचना, स्वरों के रंग, जाति, देवता, नौ रासों का वर्णन इत्यादि सम्मलित है। इस ग्रन्थ के प्राप्त अंगों में मात्र दो अंग ही प्राप्त होते है। एक गीत काण्ड व वाद्य ताल काण्ड। इस ग्रन्थ का नृत्य काण्ड उपलब्ध नहीं है। इस ग्रन्थ के गीत काण्ड के अंतर्गत वर्ण लक्षण व वर्णों को बताते हुए, 68 अलंकारों की जानकारी, नाद की उत्पत्ति, नाद के प्रकार व भेद, श्रुतियों की विवेचना, ग्राम व मूर्च्छना का वर्णन, व अंत में वाग्गेयकारों व गायकों के विषय में लक्षण व गुण–दोष आदि का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। साथ ही वीणा पर स्वर स्थापना का प्रथम वर्णन इस ग्रन्थ में ही प्राप्त होता है। वीणा पर विकृत तथा शुद्ध स्वरों के स्थानों को बताया है। जिनमें चौबिस स्वरों के शुद्ध, विकृत नाम बताए है, जिनमें से मुख्य रूप से 7 शुद्ध व 5 विकृत स्वरों को बताया है। द्वितीय काण्ड के अंतर्गत वाद्य तथा ताल का वर्णन किया गया है।

वाद्यों के संदर्भ में सर्वप्रथम तत्, अवनद्ध तथा घन वाद्यों का वर्णन प्रस्तुत करते हुए, वाद्यों के नामों तथा लक्षणों का वर्णन किया गया है। ताल के संदर्भ में दस प्राणों का वर्णन पूर्ण विवरण व नाट्यशास्त्रीय तालों का विवेचन करते हुए, पटाक्षरों आदि को वर्णन किया गया है।[(80)] इस संपूर्ण ग्रन्थ के अंतर्गत पूर्वाचार्यों के ज्ञान को समाहित करते हुए, वीणा के तार पर स्वर स्थापना का वर्णन तार की लंबाई के साथ किया गया है। इस प्रकार अध्ययन से ज्ञात होता है, कि पं० अहोबल के शुद्ध राग के स्वर वर्तमान समय के काफी राग के समान है। पं० अहोबल के विषय में यह भी कहा गया है, कि एक दक्षिण भारतीय संगीत एक विद्वान थे, जिसने उत्तर भारत में आकर संगीत का अध्ययन के पश्चात् इस ग्रन्थ की रचना की।

पं० ओंकारनाथ ठाकुर द्वारा पं० अहोबल को स्वर स्थापना के अविष्कारक के रूप में स्वीकारा गया है, क्योंकि पं० अहोबल द्वारा वीणा के तार पर पर्दों के नीचे व निश्चित स्थानों पर स्वर

---

(79) हमारे संगीत रत्न/गर्ग लक्ष्मी नारायण/पृ०–1
(80) ग्रन्थ सारामृत/जौहरी डॉ० रेनू/पृ०–29–31

स्थापना का मार्ग वर्णित किया गया है। इस ग्रन्थ के महत्व को समझते हुए पं० दीनानाथ द्वारा 1724 ई० में संगीत पारिजात का फारसी में अनुवाद किया गया।

1.3.15 सोमनाथ कृत रागविबोध [81]

रागविबोध का समय 1610 ई० माना गया है, जो जहाँगीर (1605 ई० से 1627 ई०) के काल मध्य में ही लिखा गया। जहांगीर अपने पिता के समान ही कला व संगीत का प्रेमी था। सोमनाथ पण्डित तेलुगु ब्राह्मण थे, सोमनाथ पण्डित के पिता मुद्रल पण्डित थे व राजमहद्री को निवास स्थान बताया गया है। सोमनाथ पण्डित एक धर्मनिष्ठ, उदार तथा उच्चकोटी के विद्वान थे। सोमनाथ पण्डित संगीतज्ञ के साथ ही संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान भी थे। साथ ही एक उत्तम वीणा वादक भी थे व रागविबोध में वीणा के विषय में नवीन चिन्हों को वर्णित किया है। यह दक्षिण भारत का एक ग्रन्थ है व यह ग्रन्थ उत्तर भारतीय संगीत तथा दक्षिण भारतीय संगीत के मध्य के सम्बद्धता को वर्णित करता है। सोमनाथ पण्डित द्वारा ही तीव्र, तीव्रता तथा तीव्रतम नाम से स्वरों को व्याख्यित किया है। इस ग्रन्थ में पाँच अध्यायों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। सोमनाथ पण्डित के द्वारा ठाट राग पद्धति के अंतर्गत 23 थाटों से 75 जन्य रागों वर्णित किया है। साथ ही 22 श्रुतियों पर सात शुद्ध स्वरों की स्थापना करने के पश्चात् विकृत स्वरों का वर्णन किया है, जिसमें से कुछ रागों का स्वरूप वर्तमान में भी समान है। इस प्रकार रागविबोध उत्तर भारतीय संगीत का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है।

1.3.16 पं० श्रीनिवास कृत रागतत्वविबोध[82]

रागतत्वविबोध की रचना पं० श्रीनिवास जी द्वारा 1650 ई० के लगभग की गयी। पं० श्रीनिवास द्वारा पं० अहोबल द्वारा रचित ग्रन्थ संगीत पारिजात के ही क्लिष्ट स्वरूप को सरल रूप में तथा कुछ अस्पष्ट तथ्यों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। साथ ही रागों प्रयोग होने वाले स्वरों की पूर्ण व्याख्या को वर्णित किया गया है। पं० श्रीनिवास को पं० अहोबल के अनुयायी के रूप में भी स्वीकारा जाता है। पं० अहोबल के द्वारा वर्णित वीणा के 36 इंची के तार पर स्वर स्थापना के सिद्धांत को ही स्वीकार करते हुए, उसी पर अपने विचारों को प्रस्तुत

---

(81) हमारे संगीत रत्न/गर्ग लक्ष्मी नारायण/पृ०–66
(82) हमारे संगीत रत्न/गर्ग लक्ष्मी नारायण/पृ०–64

किया। ठाट, रागों की जातियों की परिभाषा, मूर्च्छना तथा रागों के चार भागों का वर्णन किया है, साथ ही थाट के लिए मात्र 12 श्रुतियों के प्रयोग का वर्णन किया है। पं० श्रीनिवास द्वारा रागाध्याय का मूल पाठ पं० अहोबल के संगीत पारिजात से ही ग्रहण किया है। पं० श्रीनिवास का समय 17वीं–18वीं शताब्दी के मध्य का माना जाता है। पं० श्रीनिवास का जन्म नरपतिपुर के समीप हुआ था। बाल्यकाल से ही श्रीनिवास जी को सांगीतिक ग्रन्थों को चोरी–छिपे एकत्र करना पंसद था, तथा ऐसा माना जाता है कि जिसे अध्ययन कर ही रागतत्वविबोध की रचना की गयी। इस सम्बन्ध में और अधिक जानकारी साक्ष्यों में आभाव में प्राप्त नहीं होती है, तथा इसका एक कारण यह भी माना जाता है, कि श्रीनिवास सदैव एकान्त प्रिय व्यक्तित्व के व्यक्ति थे।

1.3.17 चतुर्दण्ड़ीप्रकाशिका

चतुर्दण्ड़ीप्रकाशिका दक्षिण भारत का एक महान ग्रन्थ है, जिसकी रचना 1650 ई० में पं० व्यंकटमखी द्वारा की गयी। तंजौर नरेश राजा रघुनाथ के दरबार में व्यंकटमखी के पिता गोविन्द दीक्षित प्रधानमन्त्री के पद पर नियुक्त थे। व्यंकटमखी के स्वंय भी कला प्रेमी व प्रतिभाशाली व्यक्ति थी तथा व्यंकटमखी के अनुसार संगीत सुधा की रचना उनके पिता गोविन्द दीक्षित के द्वारा की गयी थी, जिसको भ्रान्तिवश राजा रघुनाथ की रचना माना जाता है। चतुर्दण्ड़ीप्रकाशिका का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार समझा जाता है, कि संगीत के चार मुख्य आधार है– आलाप, ठाय, गीत तथा प्रबन्ध, जो कि इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है। प्रस्तुत ग्रन्थ को दस प्रकरणों में विभक्त किया गया है। प्रथम प्रकरण वीणा आधारित है, जिसे वीणा प्रकरण कहा है। प्रस्तुत अध्याय के अर्न्तगत वीणा के पर्दों पर स्वर स्थापना की दो विधियों का वर्णन तथा तन्त्रीयों को मिलाने की तीन विधियों का वर्णन किया गया है, जिनमें शुद्ध, मध्य तथा रघुनाथेन्द्र मेल सम्मिलित है। द्वितीय प्रकरण के अर्न्तगत श्रुति स्थापना व बाईस श्रुतियों की व्यवस्था को वर्णित किया है व श्रुति अन्तराल की चर्चा प्रस्तुत की गयी है। तृतीय प्रकरण स्वर प्रकरण में शुद्व तथा विकृत स्वरों के विषय में चर्चा प्रस्तुत करता है। साथ ही स्वरों के अनुसार श्रुतियों की चर्चा भी की गयी है। इसी स्वर प्रकरण के अर्न्तगत ताल निबद्ध अलंकारों को भी बताया है और पन्द्राह प्रकार की गमक व वादी, सम्वादी, विवादी व अनुवादी स्वरों को भी बताया है।

इस ग्रन्थ का सबसे महत्वपूर्ण व मुख्य भाग 72 मेलों के प्रस्तार को माना जाता है। इस ग्रन्थ का चतुर्थ अध्याय मेल प्रकरण है, जो दक्षिण भारतीय संगीत का भी मुख्य आधार है। व्यंकटमखी द्वारा शुद्ध स्वरों व विकृत स्वरों के आधार पर 72 मेलों अर्थात थाटों की रचना की। इन 72 मेलों में से मुख्य 19 थाटों का प्रयोग दक्षिण भारत में होता है व दस मुख्य थाट उत्तर भारतीय संगीत का आधार है। दक्षिण के 19 थाट में से दस थाट उत्तर भारत में स्वरों की दृष्टि से साम्य ही है। इसके पश्चात् राग प्रकरण का वर्णन प्राप्त होता है। जिसके अर्न्तगत दस राग लक्षण व 55 रागों का वर्णन ग्रह–स्वरों के क्रम के अनुरूप प्रस्तुत किया गया है। आलाप प्रकरण के अर्न्तगत आलाप की जानकारी प्राप्त होती है व आलाप गान की शैली का वर्णन प्राप्त होता है।

ठाय प्रकरण इस ग्रन्थ का सबसे छोटा प्रकरण है, संगीत कला के अर्न्तगत आलाप प्रस्तुती के पश्चात् ठाय को प्रस्तुत किया जाता है। ठाय के अर्न्तगत एक स्थायी स्वर रख आरोह में कुछ स्वरों के साथ बढ़त करते हुए, गायन प्रस्तुत किया जाता है और अवरोह में आते हुए मन्द्र षड़ज में न्यास किया जाता है। अष्ठम् प्रकरण गीत प्रकरण है, जिसमें गीत नाम के प्रबन्ध के भेद का वर्णन किया गया है। गीत सालग अथवा छायालय सूड़ का ही प्रकार है, जिसके सात प्रकार है। इसके पश्चात् एक सम्पूर्ण अध्याय प्रबन्ध को समर्पित है, जिसमें प्रबन्ध की पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है, परन्तु इस ग्रन्थ का अन्तिम अध्याय ताल प्रकरण अनुपलब्ध है। इस प्रकार चतुर्दण्डीप्रकाशिका संगीत का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, जो वर्तमान में मुख्य रूप से मेल प्रस्तार के लिए अधिक प्रसिद्ध व उपयोगी माना जाता है।

निष्कर्ष– इस शोध प्रबन्ध का प्रथम अध्याय 13वीं शताब्दी के ऐतिहासिक विवेचन पर आधारित है, जिसके अर्न्तगत शोधार्थी द्वारा अपने विषय की आवश्यकता व वस्तुनिष्ठता हेतु, 13वीं शताब्दीं के 1210 ई० से 1247 ई० के समय को व भारत की आन्तरिक स्थिति को जानने का प्रयास किया गया है। इस काल को परिवर्तन के काल के रूप में जाना जा सकता है, क्योंकि दो विपरीत स्वभाव की संस्कृतियों का आपसी द्वन्द भारत की भूमि पर स्पष्ट देखा जा सकता था। विषय के महत्व और वस्तुनिष्ठता हेतु इतिहास की जानकारी अतिआवश्यक प्रतीत होती है। इसी के फलस्वरूप भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक परिस्थित पर प्रकाश डालनें का प्रयास किया गया है। भारत कई छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था। कहीं राजपूत थे, तो कहीं चोल, चेर, चालुक्य, यादव, काकतीय इत्यादी थे। जिस कारण

आपसी संघर्ष चलता रहा। इसी प्रकार सांस्कृतिक रूप से भी भारतीय संस्कृति भी प्रभावित होती गयी, परन्तु विद्वानों व महान ग्रन्थकारों द्वारा संस्कृति की रक्षा हेतु उसे धरोहर के रूप में लिपिबद्ध कर संजोया गया। इन्हीं ग्रन्थों का जो 13वीं शताब्दीं से 18वीं शताब्दीं के मध्य लिपिबद्ध हुए उन्हीं को क्रमबद्धता के साथ इस शोध प्रबन्ध में वर्णित किया गया है। इस अध्याय को लिखनें में शोधार्थी द्वारा जिन–जिन ग्रन्थों, ऐतिहासिक पुस्तकों व तथ्यों का अध्ययन किया गया, उससे यह निष्कर्ष शोधार्थी को प्राप्त होता है, कि परिवर्तन व आवश्यकता अविष्कार को जन्म देती है और साथ ही इतिहास प्राचीन से वर्तमान में हो रहे बदलाव को वर्णित करता है। इस प्रकार प्रस्तुत अध्याय के अध्ययन के पश्चात् यह ज्ञात होता है, कि 13वीं शताब्दी के इस वृहद इतिहास में ही भारतीय संस्कृति का सार छिपा हुआ है। शोधार्थी द्वारा भारतीय संस्कृति को जानने की चेष्टा स्वरूप ही इस अध्याय के अर्न्तगत भारत की सामाजिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक स्थिति का परिचय व 13वीं सं 18वीं के मध्य रचित ग्रन्थों की जानकरी प्रस्तुत की गयी है।

****